वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

9 772582 065005

विवेक ज्योति

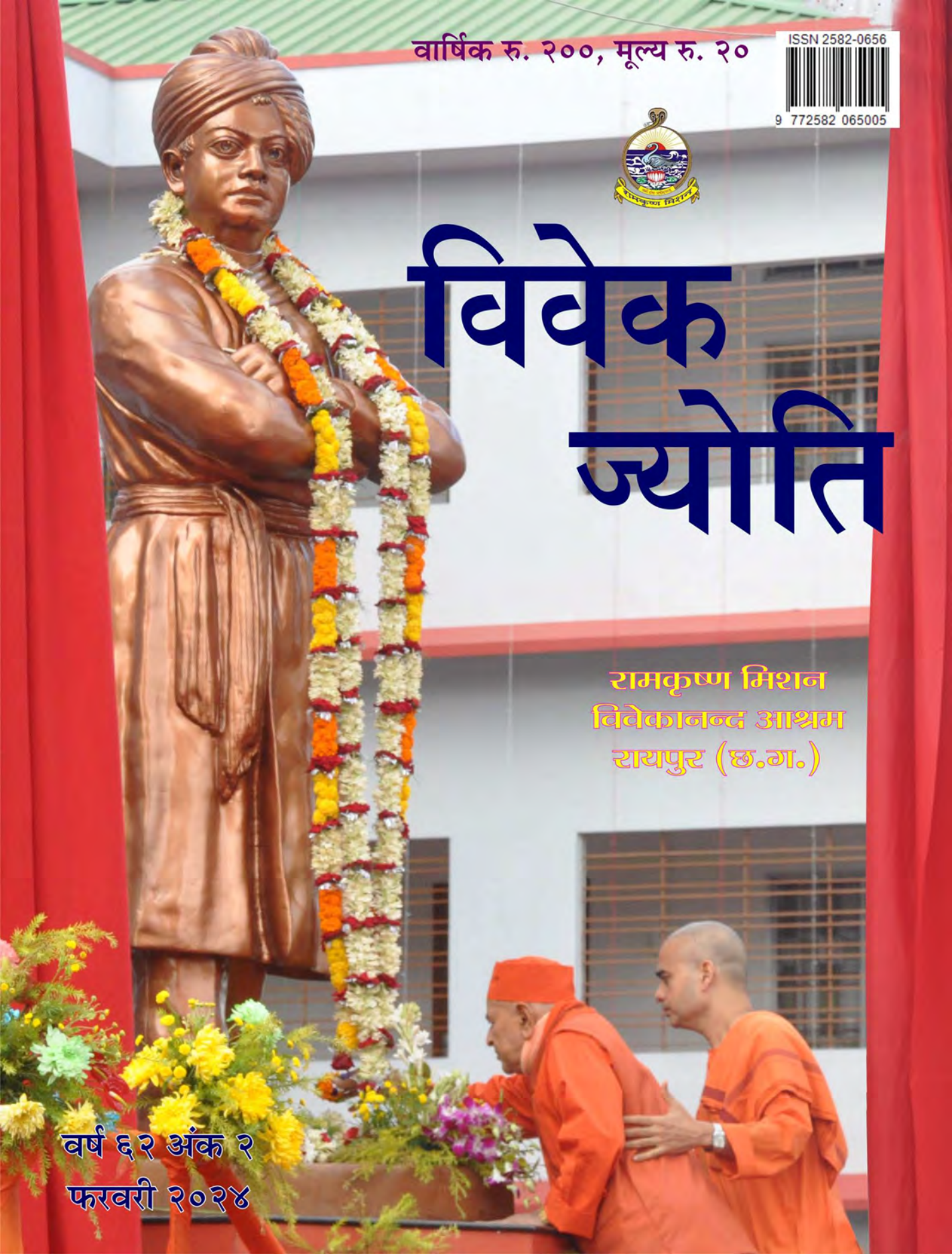

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक २
फरवरी २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक २

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

माघ, सम्वत् २०८०

फरवरी, २०२४

अनुक्रमणिका

* निर्वाणलाभ यहीं और अभी हो सकता है : विवेकानन्द ५४
* सुभाष के छात्र-जीवन में स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव (स्वामी सुवीरानन्द) ५८
* नमामि देवी नर्मदा (डॉ. राघवेन्द्र गुमास्ता) ६५
* (बच्चों का आंगन) बच्चो, परीक्षा से परेशान मत हो ! (श्रीमती मिताली सिंह) ६७
* भगवान के लिए कुछ समय निकालो (स्वामी सत्यरूपानन्द) ६८
* सबकी श्रीमाँ सारदा (स्वामी चेतनानन्द) ६९
* (युवा प्रांगण) युवाओ, कभी निराश मत होना ! (स्वामी गुणदानन्द) ७४
* विवेकानन्द और युवा आन्दोलन (नवनीहरण मुखोपाध्याय) ७९
* अप्रतिम विवेकानन्द (चम्पा भट्टाचार्य) ८२
* स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का आकस्मिक मिलन (डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी) ८८
* (कविता) जयतु विवेकानन्द महाप्रभु (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ६६
* (कविता) स्वामी विवेकानन्द (सदाराम सिन्हा 'स्नेही') ६६

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५३
पुरखों की थाती ५३
सम्पादकीय ५५
रामराज्य का स्वरूप ६२
गीतातत्त्व-चिन्तन ७६
श्रीरामकृष्ण-गीता ७८
सारगाछी की स्मृतियाँ ८०
प्रश्नोपनिषद् ८७
साधुओं के पावन प्रसंग ९२
समाचार और सूचनाएँ ९४

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

***विवेक-ज्योति* दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति रामकृष्ण मिशन, करीमगंज की है।

फरवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

०२	स्वामी विवेकानन्द
११	स्वामी ब्रह्मानन्द
१३	स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
१४	सरस्वती पूजा
१६	नर्मदा जयन्ती
२४	स्वामी अद्भुतानन्द
६,२०	एकादशी

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
सुश्री सुसम्पदा, मौर्य सेंटर, इन्दौर (म.प्र.)	३०००/-
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी,गाजियाबाद (उ.प्र.)	८००१/-
श्री लक्ष्मीनारायण दास, सुंदर नगर,रायपुर (छ.ग.)	२०००/-
श्री अनिरबन दास न्यू बोरसी कॉलोनी,दुर्ग (छ.ग.)	२०००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७१०. श्री मुक्तकंठ अग्रवाल, पुरानी बस्ती, रायपुर (छ.ग.)	पुस्तकालय, शा.उ.मा. विद्यालय, झलमला,जि.-कबीरधाम,छ.ग.

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **— व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष — 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ फरवरी २०२४ अंक २

स्वामी विवेकानन्द-स्तोत्रम्

गुरोरन्तेवासी परमपुरुषस्य प्रियतमो
नरेन्द्रः सर्वेषामवनतजनानामभयदः।
प्रतिज्ञायां भीष्मो विपदि च महीन्द्रोन्नतशिरो
विवेकानन्दोऽसौ कुसुमललितो वज्रकठिनः।।

– परम पुरुष श्रीरामकृष्ण के शिष्य नरेन्द्र सभी प्रणतजनों के अभयदाता थे। प्रतिज्ञा में भीष्म और विपदा में पर्वत के समान अटल थे। विवेकानन्द पुष्प के समान कोमल एवं वज्र के समान कठोर थे।

दरिद्राणां बन्धुर्निखिलमनुजानां प्रियकरः
समो ज्ञाने कर्मण्यविचलितभक्त्यां गुरुपदे।
समः शत्रौ मित्रेऽप्रतिममहिमोद्दीप्ततपनो
विवेकानन्दो मे हृदयगगने भातु सततम्।।

– दरिद्रों के बन्धु, समग्र मानव समाज के हितकारी, ज्ञान और कर्मयोग में समान रूप से कुशल एवं गुरु के चरणों में अविचल भक्तिवाले, शत्रु और मित्र के प्रति समदृष्टिसम्पन्न, अतुलनीय महिमामय, दीप्त सूर्य के समान वे ही विवेकानन्द हमलोगों के हृदयाकाश में सदा विराजित रहें।

पुरखों की थाती

परस्य पीडया लब्धं धर्मस्योल्लंघनेन च।
आत्मावमानसंप्राप्तं न धनं तत् सुखाय वै।।८२०।।
(महाभारत)

– जो धन-सम्पदा दूसरों को दुख-कष्ट देकर, धर्म का उल्लंघन करके या आत्म-सम्मान को खोकर अर्जित किया जाता है, उस धन से सुख नहीं मिलता।

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः।
ते एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत्।।८२१।।

– जो लोग आपस की व्यक्तिगत बातों को दूसरों को बताते फिरते हैं, वे दुष्ट लोग चींटियों की बाँबी में घुसे हुए सर्प के समान नष्ट हो जाते हैं।

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे।।८२२।।
(चाणक्य)

– जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार की भावना जाग्रत रहती है, उनकी सारी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें कदम-कदम पर सम्पदाएँ प्राप्त होती रहती हैं।

निर्वाणलाभ यहीं और अभी हो सकता है : विवेकानन्द

वेदान्त शिक्षा देता है कि निर्वाणलाभ यहीं और अभी हो सकता है, उसके लिए हमें मृत्यु की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। निर्वाण का अर्थ है आत्म-साक्षात्कार कर लेना और यदि एक बार भी, वह चाहे क्षण भर के लिए ही क्यों न हो, हमें यह अवस्था प्राप्त हो गयी, तो फिर कभी भी हम व्यक्तित्व की भ्रांति से विमोहित न हो सकेंगे। हमारे चक्षु हैं, अतः हम प्रतीयमान वस्तु को ही देखते हैं, पर हमने वास्तविक स्वरूप को जान लिया है, यह वह आवरण है, जिसने अपरिणामी आत्मा को ढक रखा है। आवरण खुल जाता है और तब हम इसके पीछे अवस्थित आत्मा को देख पाते हैं। सभी परिवर्तन या परिणाम आवरण में ही होते हैं। साधु पुरुष में यह आवरण इतना महीन होता है कि उसमें आत्मा की हमें स्पष्ट झलक दिखायी पड़ती है, पर पापी में यह आवरण इतना मोटा होता है कि हम इस सत्य में संशय करने लग जाते हैं कि पापी के पीछे भी वही आत्मा है, जो साधु पुरुष के पीछे विद्यमान है। जब सम्पूर्ण आवरण हट जाता है, तब हम देखने लगते हैं कि वास्तव में आवरण का अस्तित्व किसी काल में नहीं था, हम सदैव आत्मा ही थे, अन्य कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि आवरण की बात ही भूल जाता है। (९/७४)

यह बात नहीं है कि मुक्त होने पर मनुष्य कर्म करना छोड़ दे और निर्जीव मिट्टी का ढेर बन जाय, वह अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक कर्मशील होता है, क्योंकि अन्य लोग तो केवल बाध्य होकर कर्म करते हैं, पर वह स्वतंत्र होकर। (९/७५)

अज्ञान ही मृत्यु है और ज्ञान जीवन। (३/२८)

मुक्ति का अर्थ है, सम्पूर्ण स्वाधीनता – शुभ और अशुभ, दोनों प्रकार के बन्धनों से छुटकारा पा जाना। इसे समझना जरा कठिन है। लोहे की जंजीर भी एक जंजीर है और सोने की जंजीर भी एक जंजीर ही है। (३/३१)

मन और शब्दों में खूब दृढ़ता लाओ। 'मैं हीन हूँ', 'मैं दीन हूँ' ऐसा कहते-कहते मनुष्य वैसा ही हो जाता है। इसलिए शास्त्रकार ने कहा है –

मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीति सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत् ।।

(अष्टावक्र संहिता।।१।११।।)

जिसके हृदय में मुक्ताभिमान सर्वदा जाग्रत है, वह मुक्त हो जाता है और जो 'मैं बद्ध हूँ' ऐसी भावना रखता है, समझ लो कि उसकी जन्म-जन्मान्तर तक बद्ध दशा ही रहेगी। ऐहिक और पारमार्थिक दोनों पक्षों में ही इस बात को सत्य जानना। इस जीवन में जो सर्वदा हताशचित्त रहते हैं, उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। (६/९६)

मुक्ति का अर्थ है सत्य को जानना। हम कुछ नहीं बनते, जो हैं वही रहेंगे। श्रद्धा से मुक्ति मिलती है, काम करने से नहीं। यहाँ 'ज्ञान' का प्रश्न है। तुमको जानना होगा कि तुम क्या हो और तब काम समाप्त होगा। (४/१५९)

सम्पादकीय

सरस्वती के उपासक विवेकानन्द

माँ सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं। ये सत्य, श्रद्धा, विनम्रता, पुरुषार्थ, उद्यम, प्रखरता, तेजस्विता और मेधा की प्रतीक हैं। ये बुद्धि को प्रखर बनाती हैं। ये मेधा और विवेक को जाग्रत और वर्धित करती हैं। ये ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रदान करती हैं। ये मानव-जीवन में सर्वत्र सफलता की मूल स्रोत और लौकिक से अलौकिक की ओर प्रेरणा प्रदान करती हैं। माँ सरस्वती के एक हाथ में ग्रन्थ है, तो दूसरे हाथ में माला है, अन्य दो हाथों से वीणा की मधुर झंकार से जगत को मुग्ध कर रही हैं। यदि मानव-जीवन में अपौरुषेय वेदादि का अध्ययन और जटिल गहन ग्रन्थों का अध्ययन, चिन्तन-मनन, मंथन है, तो दूसरी ओर भगवन्नाम की माला भी मुखरित और सुशोभित होनी चाहिये। तदनन्तर जीवन में संगीत की लहरी से जीवन को सरस और आनन्दमय बनाना चाहिये। इसलिये कवियों ने माँ सरस्वती की वन्दना में उनकी वीणा से लोक मंगलमयी ध्वनि निकालने की प्रार्थना की, जिससे संसार की अज्ञानता मिट जाये और आलोक की, ज्ञान की गंगा प्रवाहित हो जाये –

एक बार पुनः कर वीणा की झंकार।
अज्ञानता मिटे जग से बहा लोक गंगा-धार।।

छायावादी साहित्यकार पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी प्रसिद्ध सरस्वती वन्दना में लिखा –

वर दे वीणावादिनी वर दे !
प्रिय स्वतन्त्र रव अमृत मन्त्र नव भारत में भर दे।।
काट अन्ध उर के बन्धन स्तर बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर।
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे।।..

माँ सरस्वती, संगीत, कला, नृत्य सबकी अधिष्ठात्री हैं। वे परा-अपरा विद्या की स्वामिनी हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी आराधना के बिना, उनकी कृपा के बिना व्यक्ति सफल नहीं हो सकता।

आइये देखते हैं कि आधुनिक युग के युगनायक स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन में किस प्रकार से माँ सरस्वती की आराधना की थी।

विवेकानन्द का प्रथम विद्यालय : माँ की गोद

स्वामी विवेकानन्द की प्रथम शिक्षा उनकी माँ की गोद में हुई। माता प्रथम गुरु होती है। यह स्वामीजी के जीवन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। माता भुवनेश्वरी देवी स्वयं शिक्षित, बुद्धिमती, कार्यकुशल और भगवत्परायण थीं। वे व्यावहारिक सभी विषयों में निपुण थीं। साथ ही मधुर मितभाषी, गम्भीरस्वभाव, तेजस्विनी और सेवापरायण थीं। अपनी सन्तानों को सुशिक्षित करने की भावना भी उनमें बहुत थी। वे स्वामीजी को अपनी गोद में ही अपने कुल के गौरव पितामह आदि की बातें, भारत के महापुरुषों तथा देवी-देवताओं की महिमा के विषय में बताती रहती थीं। स्वामीजी ने अपनी नानी रघुमणि देवी और नानी की माँ राइमणि देवी से भी बहुत-सी भागवत, पुराण और वैष्णवों की कहानियाँ सुनी थीं। इस प्रकार स्वामीजी की प्रथम शिक्षा माँ और नानी की गोद में हुई।

स्वामीजी की माँ भुवनेश्वरी देवी ने अपने पुत्र को नैतिकता और दृढ़ता की शिक्षा भी दी थी। एक बार विद्यालय के किसी शिक्षक ने यह समझकर कि नरेन्द्र ने भूगोल के पाठ में गलती है, उसे अनुचित दण्ड दे दिया। स्वामीजी बार-बार यह कहते रहे कि उन्होंने गलत नहीं कहा है, सत्य कह रहे हैं। इसके बाद भी शिक्षक ने निर्दयी होकर उन्हें पीट दिया। स्वामीजी ने घर आकर सारी बातें अपनी माँ को बतायीं। माता भुवनेश्वरी देवी ने कहा, "बेटा, यदि तुमसे गलती नहीं हुई है, तो उससे क्या आता-जाता है? फल चाहे जो भी क्यों न हो, जिसे सच समझते हो, उसे ही सदैव करते जाना। सम्भवतः कई बार इसके लिये अनुचित और अप्रिय

फल भोगना पड़ेगा, किन्तु फिर भी सत्य का कभी त्याग नहीं करना।'' उनकी माता ने यह भी शिक्षा दी थी – ''आजीवन पवित्र रहना, अपनी मर्यादा की रक्षा करना तथा कभी दूसरों के सम्मान पर आघात नहीं करना। अत्यन्त शान्त रहना, किन्तु आवश्यक होने पर हृदय को दृढ़ रखना।''[१]

कालान्तर में अपनी माता की शिक्षाओं का स्मरण कर स्वामीजी कहते थे – ''जो माँ की सच्ची पूजा नहीं करता, वह कभी भी बड़ा आदमी नहीं हो सकता। अपने ज्ञान के विकास के लिये मैं अपनी माँ का ऋणी हूँ।''

एक बार नरेन्द्र के सहपाठी के पिता ने उनसे पूछा, लगता है तुम दिनभर घर-घर घूमकर इसी प्रकार खेलते ही रहते हो। कभी पढ़ते-लिखते भी हो क्या? नरेन्द्र ने उत्तर दिया – ''जी हाँ, मैं दोनों ही काम करता हूँ – खेलता भी हूँ और पढ़ता भी हूँ।''

इसके अतिरिक्त अपने नाना नृसिंह दत्त से स्वामीजी ने पुरखों की नामावली, देवी-देवताओं के स्तोत्र, मुग्धबोध व्याकरण सीखा था। इसके सिवाय स्वामीजी ने विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में अकादमिक शिक्षा प्राप्त की। मेट्रोपोलिटन विद्यालय में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के लिये उनके पिताजी ने उन्हें एक सुन्दर जेब-घड़ी पुरस्कार में प्रदान की थी। एफ.ए. उत्तीर्ण कर बी.ए. में पढ़ते समय स्वामीजी ने भारतीय और पाश्चात्य इतिहास का विधिवत् अध्ययन किया।

उच्च शिक्षा के साथ-साथ स्वामीजी क्रीड़ा, संगीत, नाटक, वाद्य, पाकविद्या में भी पारंगत थे। वे अभिनय करते। अखाड़ा में जाकर व्यायाम करते। वे लाठी भाँजने, तलवार चलाने, नौका चलाने, तैरने, कुश्ती करने, मुक्केबाजी करने, व्यायाम करने में भी निपुण थे।

व्याख्यान की कला में भी स्वामीजी अत्यन्त निपुण थे। प्रेसीडेन्सी कॉलेज में पढ़ते समय उन्होंने रचना, अलंकारशास्त्र, न्यायशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। अँग्रेजी साहित्य में वे विशेष दक्ष थे। एक बार वहाँ पुरस्कार-वितरण समारोह और एक शिक्षक की विदाई समारोह का आयोजन हुआ। उस सभा के अध्यक्ष सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी थे। इस सभा में लोगों के आग्रह पर नरेन्द्र ने आधे घंटे अँग्रेजी में भाषण दिया, जिसकी अध्यक्ष ने प्रशंसा की। कालान्तर में अध्यक्ष ने कहा था – ''भारतवर्ष में मैंने जितने वक्ताओं को देखा है, उनमें वे सर्वोत्तम थे।''[२] ऐसी थी उनकी व्याख्यान-कला में दक्षता। परवर्तीकाल में स्वामीजी के व्याख्यान एवं व्याख्यान-शैली ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया, जिसमें विश्वधर्म-सम्मेलन, शिकागो में प्रदत्त व्याख्यान एक है। छात्रावस्था में उनके इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक हेस्टी साहब ने कहा था, 'नरेन्द्र वास्तव में एक प्रतिभाशाली युवक है।'[३]

संगीत-उपासक विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द स्वयं बहुत बड़े संगीतज्ञ थे। संगीत उन्हें विरासत में मिली थी। उनके पिता विश्वनाथ दत्त भी संगीत प्रेमी थे। वे उस्ताद से संगीत का अभ्यास करते थे। उनके दादा दुर्गाप्रसाद भी संगीत-साधक थे और उनका गला मधुर था। स्वामीजी की माता भुवनेश्वरी देवी का कंठ भी मधुर

था। वे घर पर आगत भिखारियों से उनके गीत सुनकर सीख लेती थीं और कृष्ण-यात्रा के समय गीत गाती थीं। महेन्द्र नाथ दत्त के अनुसार प्रत्येक शनिवार और रविवार को उनके घर में संगीत-सभा होती थी। इस प्रकार संगीत-साधक वंश से स्वामीजी सुगायक बने।[४]

जब वे कोई संगीत गाते थे, तो इतने भाव-विभोर होकर गाते थे कि श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाया करते थे। उनकी संगीत विद्या के कारण ही श्रीरामकृष्ण से प्रथम भेंट हुई थी। एक बार श्रीरामकृष्ण देव सुरेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ उत्सव में आनेवाले थे। श्रीरामकृष्ण भजन-प्रिय हैं। सुरेन्द्रनाथ ने भजन गाने के लिये नरेन्द्र को बुलाया। ठाकुर के आने पर नरेन्द्र ने उन्हें भजन सुनाया। श्रीरामकृष्ण देव ने नरेन्द्र के पास जाकर उसका हाथ पकड़कर उन्हें दक्षिणेश्वर आने का निमन्त्रण दिया। स्वामीजी जब पहली बार दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण

से मिलने गये थे, तो ठाकुर के आदेश पर उन्होंने बड़ा ही विरागी भजन सुनाया था, जिसका भावार्थ है –

मन चल स्व निकेतन रे।

जग-विदेश में, विदेश वेश में भ्रमता किस कारण रे।।...

इसके बाद हम देखते हैं, जब भी स्वामीजी दक्षिणेश्वर जाते हैं, उनका भजन ठाकुर सुनते थे। परवर्तीकाल में उनके संगीत प्रेम की झलक मिलती है।

ब्रह्मविद्या के उपासक स्वामी विवेकानन्द

सरस्वती माता तप, साधना और समर्पण की शिक्षा देती हैं। बिना तप के कोई भी विद्या प्राप्त नहीं होती। लौकिक विद्या के अतिरिक्त स्वामीजी में अलौकिक विद्या पराविद्या, ब्रह्मविद्या के प्रति भी बचपन से अत्यन्त गहरी रुचि दिखाई पड़ती है। वे बचपन से ध्यान करने का खेल खेलते थे। वह ध्यान भी इतना प्रगाढ़ कि सामने विषधर नाग फन उठाये विद्यमान है, फिर भी इसका तनिक भी बोध नहीं है। भाव की ऐसी प्रगाढ़ता थी कि १८७७ में (वर्तमान समय) छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर यात्रा के समय बैलगाड़ी से घने जंगलों में पर्वतमालाओं के बीच से जाते समय दो ऊँची चोटियों के परस्पर मिलन और एक ओर की चोटी से नीचे तक मधुमक्खियों के दीर्घकाल के परिश्रम से संचित मधु के लटकते छत्ते को देखकर वे मधुमक्खियों के आदि-अन्त के रहस्य-चिन्तन में निमग्न होकर अपनी बाह्य चेतना खो बैठे। जब वे सचेत हुये, तो बहुत दूर आ चुके थे। परम तत्त्व की खोज में वे ब्राह्म-समाज में जाते और उनकी उपासना में भाग लेते। साधना की ऐसी तत्परता कि युवावस्था से ही पंचवटी में ध्यान, बोधगया में तपस्या करने हेतु व्यग्रता का दिग्दर्शन होता है। आत्मानुभूति की विकलता उन्हें गाजीपुर के पवहारी बाबा की गुफा और अलमोड़ा के कसार देवी की गुफा में खींचकर लेकर चली जाती है। भारत माता को गौरवान्वित करने की प्रबल आकांक्षा उन्हें कन्याकुमारी के शिलातल पर ध्यानस्थ कर देती है। भारतवासियों के दुख-दारिद्र्य का निराकरण कर उन्हें पुनः गौरवशाली बनाने की दृढ़ इच्छा उन्हें भारतभ्रमण करने को प्रेरित करती है और अमेरिका जाने को विवश करती है।

ऐसी प्रखर प्रज्ञा, ऐसा विवेक, ऐसी लोक-संवेदना, परमतत्त्वानुभूति की ऐसी आकांक्षा, साधना की ऐसी उद्यमशीलता माता सर्वविद्याधिष्ठात्री माँ सरस्वती की कृपा से ही प्राप्त होती है।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने स्वामी विवेकानन्द को आत्मतत्त्व की अनुभूति कराकर उस अनुभूति-मार्ग में ताला बन्द कर दिया था, यह कहकर कि जब माँ का काम पूर्ण हो जायेगा, तब यह ताला पुनः खुल जायेगा। स्वामी विवेकानन्द ने कई बार उस ताला को खोलने का प्रयास किया, किन्तु वह ताला नहीं खुला और गाजीपुर में तो श्रीरामकृष्ण देव साक्षात् प्रकट भी हो गये। स्वामीजी समझ गये और तब वे उससे विरत हो गये।

स्वाध्याय, पाठ, जप-ध्यान स्वामीजी के जीवन के अभिन्न अंग थे। मानो उनकी चेतना से सम्पृक्त हों। वे इतनी एकाग्रता से अध्ययन करते थे कि पास में व्यक्ति आकर कब खड़ा हुआ, उन्हें बोध ही नहीं होता था। बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी, विषय-वस्तु को एक बार पढ़े, तो याद हो गयी। वे पुस्तक को शब्दशः नहीं, परिच्छेदतः और पृष्ठतः पढ़कर समझ जाते थे। छात्रावस्था में प्रवेशिका परीक्षा के दौरान रेखागणित की चार पुस्तकों को एक रात में ही पढ़कर उसमें सफल हो गये थे।[५] बेलूड़ मठ में अत्यल्प समय में ही अँग्रेजी विश्वकोष पढ़ लिये थे। एकाग्रता इतनी कि विदेश में बच्चों के कहने पर पहली बार में ही बन्दूक से कितने अण्डे फोड़ दिये थे।[६]

श्रीरामकृष्ण के तिरोधान के पश्चात् जब मठ वाराहनगर में था, तब स्वामीजी अपने गुरुभाइयों के साथ स्वाध्याय, योगवाशिष्ठ का पाठ, साधन-भजन-कीर्तन-नर्तन, सत्संग, शास्त्र-चर्चा आदि में संलग्न हैं। भारत-भ्रमण काल में उन्होंने जयपुर में पाणिनी की अष्टध्यायी का अध्ययन किया। अलमोड़ा में अपने शिष्य-शिष्यायों के साथ सत्संग, शास्त्र-चर्चा और कसार देवी की गुफा में जाकर ध्यान कर रहे हैं।

हम देखते हैं कि स्वामीजी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी ब्रह्मचारियों को संस्कृत पढ़ा रहे हैं, शास्त्र-चर्चा कर रहे हैं। वेद विद्यालय की स्थापना की चर्चा कर रहे हैं। अन्त में ध्यान कर रहे हैं और ध्यानावस्था में ही वे अपना शरीर त्याग कर ब्रह्मलीन हो गये। इस प्रकार स्वामीजी ने जीवन में परा और अपराविद्या दोनों के रूप में सरस्वती की उपासना की थी। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. युगनायक विवेकानन्द, १/२५ **२.** वही, १/५३ **३.** भक्तमालिका १/२५ **४.** युगनायक, १/२३ **५.** वही, १/५३ **६.** विवेकानन्द साहित्य, ६/१८९

सुभाष के छात्र-जीवन में स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

स्वामी सुवीरानन्द

महासचिव

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा

अनुवाद : स्वामी उरुक्रमानन्द

(गतांक से आगे)

सुभाषचन्द्र इसी प्रकार से स्वयं को सबसे अलग कर अपना चरित्र गढ़ने लगे। उस छोटे किशोर मन में गरीबों-दरिद्रों के प्रति गंभीर सहानुभूति उन्होंने स्वामी विवेकानन्द से ही सीखी थी। पराधीन देश को परतन्त्रता के जंजीरों से छुड़ाना, उनके मन में ये बातें कैसा आन्दोलन करती थीं, आज हमारे पास उसे जानने का कोई उपाय नहीं है। आज हम इतिहास की घटनाओं के आधार पर इन महिमामय पुरुष के विषय में केवल कल्पना ही कर सकते हैं, परन्तु उनके जीवन में जो कुछ भी घटा, उसके पार्श्व में रामकृष्ण-विवेकानन्द का कितना अमोघ गहरा प्रभाव पड़ा था, इसका आकलन कौन करेगा ! परवर्ती काल में सुभाषचन्द्र ने स्वयं कहा था – 'श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के प्रति मैं कितना ऋणी हूँ, उसे वाणी में किस प्रकार अभिव्यक्त कर सकूँगा! उनके पुण्य-प्रभाव से ही मेरे जीवन का उन्मेष है... आज यदि स्वामीजी जीवित होते, तो वे नि:सन्देह मेरे गुरु होते – अर्थात् उन्हें मैं अपने गुरुदेव के रूप में वरण करता। जो भी हो, मैं जितने दिन भी इस धराधाम पर जीवित रहूँगा, श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के प्रति अनुगत और निष्ठावान बना रहूँगा।'' (उद्‌बोधन, आश्विन १३९४ संख्या, पृ. ४५९)

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा था –

पतन, अभ्युदय, बन्थूर पन्था जुग-जुग धावित जात्री।
हे चिरसारथि! तव रथचक्रे मुखरित पथ दिनरात्रि।।

(भावार्थ : पतन, अभ्युदय तथा जीवन का यह उत्थान-पतन युग-युग से है, यात्री इसमें चलते हैं। हे ईश्वर, हे चिरसारथि ! तुम्हारे इस रथचक्र में पथिक दिन-रात अग्रसर होते रहते हैं।) (रबीन्द्रनाथ ठाकुर, गीतवितान अखंड, विश्वभारती प्रकाशक, कोलकाता १४१६, पृ. २५०)

नेताजी के जीवन में विवेकानन्द एक अनश्वर, अविचल, चिरसारथि थे। यद्यपि उस समय स्वामीजी नहीं थे, तथापि भारत के करोड़ों मानवों के सामने उन्होंने सुभाषचन्द्र को एक महानायक बना दिया। विवेकानन्द ने ही इस युग में सुभाषचन्द्र को लोभ दानवरूपी कुरुक्षेत्र के सामने खड़ा कर दिया था।

इंग्लैण्ड प्रवासी उनके बड़े भाई श्री शरत्‌चन्द्र बसु को उन्होंने एक पत्र लिखकर भारत की तमसाच्छन्न अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा था – 'फिर भी मेरे मन में अब भी आशा है। आशारूपी एक दूत हमारे प्राण के समस्त तम को नाश करके हृदय में अग्निरूप शिखा को जलाने के लिए आये हैं – वे हैं ऋषि स्वामी विवेकानन्द। वे ही दिव्यकान्ति, विशाल अन्तर्भेदी दृष्टि रखकर, एक संन्यासी के वेश में हिन्दू-धर्म की अन्तर्निहित वाणी का सारे विश्व में प्रचार-प्रसार करने हेतु आविर्भूत हुए हैं।' (सुभाषचन्द्र बसु पत्रावली, नेताजी भवन, कोलकाता द्वितीय संस्करण, पृ. ३७)

भारत के नवयुवकों के लिए विवेकानन्द ने जिन आदर्शों को निर्धारित किया था, सुभाषचन्द्र उन्हीं आदर्शों को अपने स्वयं के लिए निर्दिष्ट मानते थे। सुभाषचन्द्र ने लिखा था : 'मैंने इस बात से समझा है कि मनुष्य होने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है – १. अपने भूतकाल का मूर्तरूप २. वर्तमान की उपलब्धि ३. भविष्य का देवदूत।' (सुभाषचन्द्र बसु, पत्रावली द्वितीय संस्करण, कोलकाता, पृ. ५०)

जीवन में कुछ मूल आदर्शों की उपलब्धि करने हेतु किस तरह विभिन्न पथों से गुजरते हुए जाना पड़ता है, इस बात को समझाने के लिए सुभाष ने विवेकानन्द की उक्ति का सहारा लिया था। 'अपने स्वयं के जीवन के कर्मों का समन्वय करने के लिए किसी एक दर्शन का सहारा लेकर अपना जीवन-गठन करो। तोड़ो और निर्माण करो, जीवन का विकास सतत विनाश एवं निर्माण के मध्य ही होता है। शून्य से कुछ भी प्रकट नहीं हो जाता। मनुष्य निम्न सत्य से उच्चतर सत्य की ओर अग्रसर होता है। हमें अनिश्चितताओं के बीच होते हुए ही जाना होता है। इन सबसे ही जीवन में पूर्णता आती है। (सुभाषचन्द्र बसु, पत्रावली द्वितीय संस्करण, कोलकाता, पृ. ५३)। विवेकानन्द के समस्त विचार उनके पत्रों में भी अपनी छाया दिखलाते हैं। 'अपने भ्रमण काल में वे जब पहाड़ों पर विचरते थे, तो ये सब विचार उनके मानस पटल पर उभरा करते थे – हमें अपनी धमनियों में केवल रजोगुण को भर देना होगा। ऐसी शक्ति की आवश्यकता है, जिसके द्वारा हम सहज में पर्वतों का उल्लंघन कर सकें। जब हमारे आर्यगण इस तरह शक्तिमान होते थे, तभी उनके कण्ठ से वेदज्ञान मुखरित हो उठता था। हमें अपनी मातृभूमि से ही सब कुछ आरम्भ करना है – भव्य एवं पवित्र हिमालय से। भारतवर्ष में यदि कुछ अमूल्य और गौरवमय है, तो वह सब हिमाचल की महिमामण्डित श्वेत हिमशिखरों में ही निहित है। (सुभाषचन्द्र बसु, पत्रावली द्वितीय संस्करण, कोलकाता, पृ. ५८)

आदर्श के सम्बन्ध में नेताजी ने कहा था, 'प्रत्येक व्यक्ति या देश का एक धर्म अथवा एक आदर्श होता है। उसी धर्म या आदर्श का आलम्बन लेकर वह व्यक्ति या देश अपना निर्माण करता है। एक ओर उसी आदर्श को सार्थक करना उसके जीवन का उद्देश्य होता है और दूसरी ओर, इस आदर्श को उसके जीवन से यदि निकाल लिया जाए, तो उसका जीवन निरर्थक हो जाता है। तथापि यह भी एक सर्वमान्य सत्य है कि देश और काल की सीमाओं के बीच इस आदर्श का क्रमविकास और अभिव्यक्ति एक दिन या एक वर्ष में नहीं हो जाती। मनुष्य की जीवन-साधना जैसे अनेक वर्षव्यापी होती है, वैसे ही राष्ट्रीय जीवन की धारा भी पुरुषानुक्रम से निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इसीलिए आदर्श कोई प्राणहीन वस्तु हो ही नहीं सकता, उसकी अपनी गति होती है और उसमें प्राणसंचारिणी अनन्त शक्ति भी होती है। यह आदर्श सुभाषचन्द्र के पास एक युगधर्म ही था। अपने छात्र जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते समय उन्हें ऐसा लगा कि आत्मस्थ होना ही सर्वोच्च है। ऐसे में भी स्वामीजी का युगान्तरकारी प्रभाव भी परिलक्षित होते स्पष्ट देखा गया था। १५ वर्ष पहले जो आदर्श बंगाली छात्र-समाज को अनुप्राणित करता था, वह स्वामी विवेकानन्द का ही आदर्श था। उस आदर्श के प्रभाव से तरुण बंगाली छात्र-संघ षड्रिपुओं पर विजय करने, स्वार्थपरता और सब प्रकार की मलिनताओं से मुक्त होकर शुद्ध, बुद्ध जीवन प्राप्त करने हेतु दृढ़प्रतिज्ञ हुआ था। समाज और जाति के निर्माण का मूल व्यक्तित्व विकास ही होता है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द हमेशा कहा करते थे कि मनुष्य-निर्माण करना ही मेरा ध्येय है।' (तरुणेर स्वप्न, पृ. ९३)

स्वामी विवेकानन्द मानव की व्यक्तिगत उन्नति की बात कहा करते थे, किन्तु राष्ट्रीय उन्नति और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की बात को भी वे भूले नहीं थे। कर्म-विमुख संन्यास अथवा पुरुषार्थहीन भाग्य पर उनका विश्वास नहीं था। विवेकानन्द का विश्वास था कि मानव जीवन की दुख-यन्त्रणा, सीमाहीन संग्राम के बीच समस्त क्षेत्र में पौरुषदीप्त त्याग, निर्भीक जीवन एवं बलिदान का प्रयोजन है। Freedom, Freedom is the song of the soul. – स्वाधीनता, स्वाधीनता आत्मा का संगीत है। (तरुणेर स्वप्न,पृ. ९४) अनन्त आत्मा तथा अनन्त मुक्ति का गीत, प्राण उद्वेलित करनेवाला संगीत, यह विवेकानन्द का मानव को एक अवदान है। स्वामीजी की ऐसी वाणी ने सुभाषचन्द्र को किस प्रकार अनुप्राणित किया था, इसका प्रमाण उनकी इस लेखनी से पता चलता है – 'यह वाणी जब स्वामी विवेकानन्द के अन्तर से निकलती थी, तब उसने देशवासियों को मुग्ध एवं उन्मत्त कर दिया था। उनकी साधना में से, उनके आचरण के माध्यम से तथा उनके व्याख्यान के द्वारा यही सत्य प्रकाशित हुआ था।'' (तरुणेर स्वप्न, पृ. ९४) विवेकानन्द की इस वाणी ने सुभाषचन्द्र को सर्वस्वत्याग करने हेतु प्रेरित

किया था। हो सकता था कि सुभाषचन्द्र देश में किसी उच्च प्रशासनिक पद पर सुशोभित हो सुख-स्वप्न के दिन यापन करते, किन्तु विवेकानन्द के आह्वान से सुभाषचन्द्र उद्दीप्त हो गये थे। वे धीरे-धीरे देशहित कार्य करने हेतु विवेकानन्द के हाथों एक यन्त्रस्वरूप होने के लिये स्वयं को तैयार करने लगे थे। उन्होंने एक गम्भीर आवेग के साथ लिखा – 'हमारे पास सब कुछ है, परन्तु जो वस्तु नहीं है, वह है सभी बाधाओं का अतिक्रमण करके सभी विपदाओं को तुच्छ बनाकर एक उच्च आदर्श के पीछे अपने सम्पूर्ण जीवन को लगा देना। वह क्षमता, उद्देश्य के प्रति दृढ़ता हमारे पास नहीं है। यह बात अंग्रेजों में है। इसीलिए अंग्रेज इतने बड़े हो सके और हम हीनता को प्राप्त हुए। हम अपने हृदय से अपने देश से प्यार नहीं करते, स्वदेशवासियों से प्रेम नहीं करते, इसीलिए हमलोग गृह-विवाद करते रहते हैं, इसीलिए हममें से मीर जफर और उमीचन्द का जन्म होता है। अब भी उनकी वंशवृद्धि हो रही है। यदि हम अपने देश से प्रेम करते हैं, तो आत्म-बलिदान की क्षमता अर्जित करनी होगी, हमारे चरित्र में उद्देश्य के प्रति दृढ़ता, अविराम और अक्लान्त परिश्रम की क्षमता वापस आ जायेगी। उद्देश्य के प्रति दृढ़ता और नैतिक क्षमता, ये दोनों हम कहाँ पाएँगे? वन-जंगल में युग-युगान्तर तक तपस्या करने के उपरान्त भी प्राप्त नहीं होगा। इसे हम जीवन में निष्काम कर्म करते हुए और अविराम संग्राम में लिप्त होकर ही पाएँगे।' (तरुणेर स्वप्न, पृ.११९)

सुभाषचन्द्र स्वामी विवेकानन्द को पढ़कर, जानकर तभी श्रीरामकृष्ण तक पहुँच सके थे। इस बात को सुभाषचन्द्र ने स्वयं ही स्वीकार किया है, अन्यथा लोग यह समझते कि अपनी जननी के मुख से सुनकर ही सुभाषचन्द्र श्रीरामकृष्ण को जान पाए थे। श्रीरामकृष्ण का कामिनी-कांचन का त्याग करना, इस महान उपदेश ने उनके मानस पर एक अप्रतिम छाप छोड़ी थी। यद्यपि सुभाषचन्द्र यह जानते थे कि श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द एक ही सत्ता के दो रूप हैं, तथापि उनके मन को ये दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार से आलोड़ित करते थे। किसी समय संकटग्रस्त होने पर श्रीरामकृष्ण ने कैसे उनका पथ प्रदर्शन किया था, इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही लिखा है – ऐसे समय में कैसे एक कठिन परीक्षा की स्थिति में से मुझे गुजरना पड़ा था, वैसी परीक्षा शायद मेरे जीवन में कभी भी नहीं आई होगी। श्रीरामकृष्ण के त्याग और शुद्धता के दृष्टान्तों के फलस्वरूप उस समय मेरी अपनी कुप्रवृत्तियों के साथ मेरा जो संघर्ष हुआ था, वह अनिवार्य था। (भारत पथिक, पृ. ४३) इन सबके बावजूद, श्रीरामकृष्ण की शिक्षाओं का प्रभाव जो उन पर पड़ा था, उन सबका दिग्दर्शन उनकी अपनी माता को लिखे पत्रों के माध्यम से हो जाता है। जैसे, दो-चार बातें सीख लेने से ही क्या ज्ञान हो जाता है? प्रकृत ज्ञान तो ईश्वर-ज्ञान ही होता है और बाकी सब अज्ञान ही होता है। मैं विद्वान या पण्डित की श्रद्धा नहीं करता, परन्तु भगवान के नाम पर जिनके भी आँसू बहा करते हैं, उनकी मैं देवता के समान श्रद्धा करता हूँ। पढ़ाई-लिखाई करना ही छात्र-जीवन का उद्देश्य नहीं है। विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त करके ही विद्यार्थी स्वयं को कृतार्थ समझा करते हैं। किन्तु विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर डिग्री आदि प्राप्त करने के उपरान्त भी यदि कोई प्रकृत ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकें, तो उस शिक्षा से मैं घृणा करता हूँ। चरित्र-गठन ही छात्र-जीवन का प्रथम कर्तव्य होता है। इस चरित्र-गठन का अर्थ है – भगवद्-भक्ति, स्वदेश-प्रेम और ईश्वर के लिए तीव्र व्याकुलता। (पत्रावली, पृ. २७)। १०वीं की परीक्षा को अत्यन्त उत्कृष्ट सफलता के साथ उत्तीर्ण करने के उपरान्त ही सुभाषचन्द्र ने अपनी माता को यह पत्र लिखा था।

धर्मजगत में श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें मौलिक रूप से अधिष्ठित कर दिया था। श्रीरामकृष्ण शक्ति के एक अवतार थे और स्वामी विवेकानन्द ने इस जगत में इस शक्ति का निर्भीक होकर उद्घोष किया था। स्वामी विवेकानन्द की एक वाणी को यहाँ उद्धृत करने पर हमें समझ में आ जाएगा कि क्रान्तिकारी क्यों शक्ति के उपासक होते हैं – मैं भयंकर को भयंकर रूप में ही प्रेम करता हूँ। संग्राम किये जाओ, अविराम संग्राम किये जाओ। प्रतिपद तुम्हारी पराजय हो सकती है, तब भी संग्राम किये ही जाओ, यही आदर्श है। (भगिनी निवेदिता – स्वामीजी के जे रूप देखियाछि, पृ. १४८)

श्रीरामकृष्ण माता काली को अपनी स्वयं की माँ जैसी ही मानते थे। सुभाषचन्द्र ने एक पत्र में कल्पना करके ऐसे अद्भुत चित्र का वर्णन किया था – 'मेरे मानस पटल पर एक ऐसा चित्र उभरकर आता है। कालीमन्दिर का दक्षिणेश्वर मन्दिर – सम्मुख खड़ी हैं खड्गहस्ता आनन्दमयी माँ काली, शिवासन पर अधिष्ठिता, शतदलवासिनी और उनके सम्मुख एक बालक खड़ा है। नितान्त भोला बाल प्रकृतिवाला बालक। बालक सिसकियाँ लेते हुए रो रहा है और न जाने किसी

से कह रहा है – 'माँ ! ये लो अपना भला और यह लो अपना बुरा, ये लो अपना पाप और ये लो अपना पुण्य।'' करालमुखी दंष्ट्राकरालवदनी थोड़े में कभी सन्तुष्ट नहीं होती, वह सब कुछ का ग्रास कर लेती है। इसीलिए, भला भी उसे चाहिए और बुरा भी। पुण्य भी उसे भाता है और पाप भी। बालक को सब कुछ उसे देना होगा अन्यथा शान्ति नहीं। माँ भी उसे छोड़ेगी नहीं।'' (स्वामीजी पत्रावली, पृ.४४) बड़ा कष्ट है। माँ को तो सब कुछ देना पड़ेगा। माँ किसी से भी सन्तुष्ट न होंगी। इसीलिए रोते-रोते ऐसा कह रहे हैं – ये लो, ये लो। देखते ही देखते अश्रुधारा बन्द हो गयी। छाती पर आँसू भी सूख गये। हृदय भी शान्त हो गया। जहाँ एक समय कितना कष्ट हो रहा था, वहाँ पर परम शान्ति विराजमान है। सभी शान्तिमय ! हृदय मधुमय हो गया। बालक उठ खड़ा हुआ, उसका अपना कहने के लिये अब कुछ बचा ही नहीं। सब कुछ तो उसने समर्पण कर ही दिया था। ये बालक ही रामकृष्ण थे। (स्वामीजी पत्रावली, पृ.४४)

अब और तीस वर्ष पीछे चलते हैं। आजाद हिन्द फौज के नेताजी सिंगापुर रामकृष्ण मिशन गये थे। वहाँ वे बीच-बीच में जाया करते थे, अधिकतर गहन रात्रि में। उस समय के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी भास्वरानन्द थे। उन्होंने बताया था कि नेताजी ने उनसे एक बार पूछा था – क्या आपके पास वह चित्र है, जिसमें माँ काली के चरणों के समक्ष श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। यह चित्र हमारे बचपन में बहुप्रचलित था। यदि आपके पास हो, तो मुझे दीजियेगा। यह कोई भव्य और आकर्षक चित्र न होने पर भी बचपन से ही उसके प्रति सुभाषचन्द्र का एक विशेष आकर्षण था। उसी चित्र को सामने रखकर सुभाष ने न जाने कितने दिनों तक ध्यान किया था। उसे देखकर उनके भीतर एक उद्दीपना हुआ करती थी। भारतीय जीवन में एक दुर्गम पथ पर हमारे नेताजी पहुँचे थे। उस पथ पर न जाने कितने आघात उनके हृदय पर लगे होंगे और जमा हुए होंगे। संकटकाल में इतने विध्वंसों के मध्य वे थे एक अक्लान्त सैनिक। यदि उनसे कोई प्रश्न पूछता कि ऐसा दुर्जय साहस, अप्रतिम उत्साह, दुरन्त लड़ाई को उन्होंने किस तरह आजीवन धारण कर रखा? तो निश्चय उनका उत्तर होता – उनके पार्श्व में खड़े हैं – युगावतार श्रीरामकृष्ण, युगजननी माँ सारदा और युगनायक विवेकानन्द। गढ़वाल, खासिया, जयन्तीया आदि पहाड़ी क्षेत्रों से होते हुए देश के मैदानी क्षेत्रों में जिन महानायक की पदध्वनि गुँजित हुई थी, शिवालिक से हिमाद्री की शिखर चोटियों पर, उस महानायक के जीवन-निर्माण की कहानी एक जीवन्त दीपशिखा है, एक ऐसी पूर्ण कथा है, एक अनाद्यन्त इतिहास है। श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा की

जीवन वेदी से उत्थित जो अग्निरेखा विवेकानन्द के रूप में रूपान्तरित हुई थी, नेताजी सुभाष नामक एक वह्निवलय उत्थित हुआ था, उससे भारत वर्ष आज भी सतत प्रेरणा ग्रहण कर रहा है। हमारी पृथ्वी का इतिहास भी आगे बढ़ता ही रहेगा बहुत कालों तक, कितनी शताब्दियों को पार कर लेगी यह सभ्यता, कितने भयंकर झंझावातों से यह संसार उद्वेलित हो उठेगा, फिर यह सभ्यता परिवर्तनशील उत्थान-पतन की तरंगों से प्रताड़ित हो ध्वंस हो जाएगी। परन्तु फिर भी विवेकानन्द-गोमुखरूप उत्स से जैसे गंगा को भगीरथ ने बड़े कष्टपूर्वक इस धराधाम पर अवतरित किया था, उसे आनेवाली सभ्यता भूल नहीं पाएगी। उसी तरह इस स्वाधीनता के भागीरथ-प्रवाह से जुड़े रक्तरंजित संघर्ष के महानायक सुभाषचन्द्र बसु ही थे। इन दोनों महापुरुषों को पाकर हम कितने धनी हुए और ऋणी भी !

(समाप्त) ○○○

भक्ति स्वाभाविक सुखकर पथ है। दर्शन एक प्रबल वेगवती पर्वतीय नदी को बलपूर्वक ठेलकर उसके उद्गम-स्थान की ओर ले जाने के सदृश है। व्रत द्रुततर है, किन्तु विशेष कठिन भी है। दर्शन कहता है, 'समुदय प्रवृत्ति का निरोध करो।' भक्तिमार्ग कहता है, 'सब कुछ धारा में बहा दो, सदा के लिए सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर दो।' यह मार्ग लम्बा तो है, किन्तु अपेक्षाकृत सरल और सुखकर है।

– स्वामी विवेकानन्द

रामराज्य का स्वरूप (१०/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

ये जो नेम, यज्ञ आदि नाना प्रकार के साधन हैं, ये मानो काष्ठादिक औषधियाँ हैं –

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान।।
७/१२१/ख

पर मनुष्य के मन के रोगों के लिए यह अनुष्ठान कीजिए, यह व्रत कीजिए, यह पूजा कीजिए, यह कीजिए, वह कीजिए, ये सारे साधन रोग को कुछ दबाते तो हैं, पर मिटा नहीं पाते। मन का रोग मिटे, इसके लिए आवश्यकता थी दवा बनाने की।

भगवान राम ने, ये जितनी घटनायें थीं, कल तो समुद्र मन्थन की बात कही गई थी, पर महर्षि भरद्वाज ने उसे दूसरे रूप में रखा। उन्होंने कहा – भरत,

यहउ कहत भल कहहि न कोऊ।
लोकु बेदु बुध संमत दोऊ।। २/२०६/१

रामायण में एक सूत्र दिया गया कि अन्य औषधियों के द्वारा रोग केवल दबता है, दूर नहीं होता। एक ही औषधि ऐसी है, जो मन के रोगों को पूरी तरह दूर कर सकती है। वह औषधि कौन-सी है? रामायण में कहा गया –

सदगुर बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न विषय कै आसा।।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। ७/१२१/६-७

भगवान की भक्ति का रस जो है, वही मनुष्य के मन के रोगों को दूर करेगा और इसका अभिप्राय है कि क्रियामूलक जो धर्म है, वह बाहर परिवर्तन कर पाता है, पर अन्तर्मन का पूरा परिवर्तन तो भक्ति के द्वारा होता है। भक्ति रस के द्वारा ही मन के रोग दूर होते हैं।

महर्षि भरद्वाज ने कहा भरत, समस्या यही थी कि आयुर्वेद में बहुत-सी दवाएँ ऐसी लिखी हुई हैं कि उसमें कुछ वस्तुएँ तो मिलती हैं और कुछ वस्तुएँ नहीं मिलतीं। च्यवनप्रास का नाम आपने सुना होगा। बड़ी महिमा है उसकी। लेकिन च्यवनप्रास में कुछ औषधियाँ तो बाजार में मिल जाती हैं, पर कुछ दवाइयाँ ऐसी हैं, जो मिल ही नहीं पातीं, इसलिए उसका ऐसा प्रभाव दिखाई नहीं देता। महर्षि भरद्वाज ने कहा कि भरत, भगवान राम ने यह अनुभव किया कि मनुष्य के मन के रोगों को दूर करने के लिए जिस भक्ति रस की आवश्यकता है, वह भक्ति रस संसार में बन नहीं पा रहा है। कोई ऐसा भक्त नहीं मिला, जिसके चरित्र के द्वारा लोगों के मन की समस्या का पूरा का पूरा समाधान हो सके, ऐसा कोई संत, ऐसा कोई भक्त दिखाई नहीं पड़ा, तो भगवान राम ने निर्णय किया कि अब भक्ति रस का श्रीगणेश किया जाए। तब? बहुत बढ़िया बात कही उन्होंने। बोले, भरत बहुत अच्छा हुआ कि राम वन गये। बहुत अच्छा हुआ कि कैकेयी ने उन्हें वन भेज दिया। उससे भी आगे बढ़कर उन्होंने क्या कहा? बोले, बहुत अच्छा हुआ कि तुमको कलंक लगा। हद हो गई। यहाँ तक तो ठीक है कि बहुत अच्छा हुआ कि कैकेयी ने राम को वन भेज दिया, पर उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि तुमको कलंक लगा, यह बहुत अच्छा हुआ। क्यों? वह शब्द बिल्कुल ठीक यही है। बोले –

तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु।।
२/२०८/०

वस्तुत: यह जो आयुर्वेद में रस बनाया जाता है, उसमें सोने और रत्नों को अग्नि में जलाकर भस्म किया जाता है, भस्म करके उनको ऐसा रूप दे दिया जाता है, उसमें मणि की वह शोभा नहीं, सोने की शोभा आपको रस में दिखाई नहीं देगी, पर भस्म होकर ही वह रस तैयार हुआ, उस रस से रोगों का निराकरण हुआ। वस्तुत: इस चौदह वर्ष के वियोग की अग्नि में तुमको पकाया जा रहा है। इसलिए कि तुम जब कज्जलि बनोगे, तब मानसिक समस्याओं का निराकरण होगा। बोले, भरत, तुम्हें निमित्त बनाकर भगवान श्रीराघवेन्द्र अगर चौदह वर्ष के वियोग की अग्नि उत्पन्न न करते, तो राम भक्ति का यह जो दिव्य रस है, तुम्हारे चरित्र का जो दिव्य रस है, इस रस का निर्माण नहीं हो पाता, इसलिए हम भगवान राम के बड़े ऋणी हैं कि उन्होंने तुम्हें विरह की अग्नि में भस्म करके, तुम्हारे ऊपर कलंक की सृष्टि करके भी समाज के सामने ऐसा चरित्र रखा, जिस चरित्र के द्वारा लोगों के मन की समस्याओं का निदान हो सके।

अब इस दोहे की व्याख्या एक स्वतंत्र प्रसंग है। इसमें अभिप्राय क्या है? आयुर्वेद में जैसे रस में कई वस्तुएँ मिलाई जाती हैं, उसी प्रकार राम-भक्ति के रस में भी भरत का धर्म, शील, विवेक, भ्रातृत्व इन सबका समावेश है। इसका अभिप्राय है कि अगर हम चाहते हैं कि हमारे मन के रोगों का निराकरण हो, तो हमारा कर्तव्य है कि भरत भक्ति रस के रूप में, चौदह वर्षों में श्रीभरत ने जो आचरण किया, भरत की जो विचार-धारा है, भरत की जो मान्यता है, उसको हम अपने जीवन में सेवन करेंगे, तो हमारे मन के रोगों का निराकरण होगा। इसलिए महर्षि भरद्वाज कहते हैं कि लोक-कल्याण के लिए ही यह घटना घटित होगी। वस्तुत: रामायण का मूल सूत्र यह है कि अगर हम समाज की सेवा करना चाहते हैं, तो स्वस्थता की आवश्यकता है और स्वस्थता के लिए आवश्यक है कि हम अपने मन के रोगों का निराकरण करें। दोषों के निराकरण करने के लिए आवश्यक है कि भरत के प्रेमरस और भक्ति रस का सेवन करें। इसलिए भरत के चरित्र और व्यक्तित्व में क्रम है। इसके पश्चात् जब श्रीभरत चित्रकूट जाते हैं, तब स्वयं उनके हृदय की ज्वाला शान्त हो जाती है –

कर कमलनि धनु सायकु फेरत।
जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।। २/२३८/८

तब सब दुख मिट जाते हैं –

करत प्रबेस मिटे दुख दावा।
जनु जोगीं परमारथु पावा।। २/२३८/३

जब चित्रकूट में श्रीभरत उस स्थिति का अनुभव करते हैं, तो वह उनको प्रेरित करता है कि अयोध्या लौट चलें और अयोध्या के राजकाज का संचालन करें। वहाँ भी भगवान राम ने जब श्रीभरत के अयोध्या जाने और राज्य कार्य का संचालन करने के लिए प्रेरित किया, तो भरत ने यही कहा –

बिनु आधार मन तोषु न सांती। २/३१५/२

प्रभु, अयोध्या का राज्य चलाने के लिए कोई आधार तो दीजिए। तब प्रभु ने पादुकाएँ दीं। उन पादुकाओं को श्रीभरत ने ले जाकर राज्य के सिंहासन पर रख दिया और चौदह वर्ष राज्य चलाया। इसका अभिप्राय क्या है? व्यक्ति ईश्वर के आसन पर बैठकर अगर सत्ता और पद का स्वामी अपने आपको मान लेगा, तो उसके मन में पद का मद आए बिना नहीं रहेगा। इसलिए रामराज्य में जो कर्तव्य कर्म का निर्वाह करना चाहता है, उसका कर्तव्य यह है कि सत्ता के आसन पर वह स्वयं अपने अहम् को न बिठावे, अपितु प्रभु की पादुका को बिठावे। स्वयं प्रभु के पादुका का सेवक बनकर रहे। भगवान श्रीराम ने जब श्रीभरत को पादुका दी, तो श्रीभरत ने उस पादुका को सिर पर धारण कर लिया। प्रभु ने मुस्कुराकर श्रीभरत की ओर देखा। बोले, पादुका को तुमने सिर पर धारण क्यों किया? भरत ने कहा, प्रभु जो स्वीकृति मैं चाहता था, वह स्वीकृति आपने दे दी। क्या? बोले, आपने पादुका दी, तो पादुका तो पद के लिए ही दिया जाता है न ! तो मैं इतना ही तो चाहता था कि आप यह स्वीकार कर लें कि अयोध्या का राज्यपद आपका है और दूसरे को सेवक की तरह चलाना है। तो आप अयोध्या के राज्यपद को अपना पद न मानते, तो पादुका न देते। इसलिए अब प्रभु, निरन्तर इस बात का अनुभव होता रहे कि जो कुछ है –

संपति सब रघुपति के आही। २/१८५/३

सब कुछ ईश्वर का है और सिंहासन पर व्यक्ति का अहम् नहीं, प्रभु का पद निरन्तर ध्यान में बना रहे। ये ईश्वर के पद की पादुकाएँ हैं। प्रभु ने श्रीभरत से व्यंग्य किया, भरत, तुम्हें मैंने पादुका दी, तो तुमने उसे सिर पर रख लिया, यह तुम्हें आधार मिला कि भार मिला? भरत ने मुस्कुरा

कर कहा – प्रभु, मुझे तो जो आधार चाहिए था, वह मिल गया। इसके तीन अर्थ हैं। गोस्वामीजी ने कहा कि श्रीभरत ने पादुकाओं को पादुकाओं के रूप में नहीं देखा –

भरत मुदित अवलंब लहे ते।
अस सुख जस सिय रामु रहे तें।। २/३१५/८

ये पादुका नहीं, साक्षात् श्रीसीता और श्रीराम हैं। यह एक सूत्र ज्ञान की दृष्टि से है। रामराज्य कब बनेगा? बोले, जब पादुका में भी राम दिखाई देने लगें, कण-कण में राम दिखाई देने लगें। पादुका में दिखाई देने का अर्थ क्या हुआ? लोगों को तो राम चित्रकूट में दिखाई दे रहे हैं, पर श्रीभरत को पादुका में और पादुका में ही नहीं, चित्रकूट की यात्रा में श्रीभरत ने श्रीराम का दर्शन किया –

ते प्रिय राम लखन सम लेखे। २/२२३/७

इसका अर्थ है कि रामराज्य का संचालन करने का ज्ञानात्मक पक्ष यह है कि सर्वत्र नारायण का ही दर्शन होने लगे, कण-कण में ईश्वर का साक्षात्कार होने लगे। भरत को धूल में भी श्रीराम दिखाई देते हैं, कनक बिन्दु में भी श्रीराम दिखाई देते हैं, वनवासियों में भी श्रीराम दिखाई देते हैं, पादुका में भी श्रीराम दिखाई देते हैं। इसी प्रकार से जो रामराज्य की स्थापना में संलग्न है, उसको सर्वत्र भगवान का दर्शन होने लगे, तो ज्ञान की दृष्टि से रामराज्य की स्थापना होगी। अगर भक्ति की दृष्टि से विचार करके देखें, जब प्रभु ने कहा कि भरत, तुम्हें भार मिला कि आधार मिला? तो भरत ने कहा, आप ने तो भार का सारा रहस्य ही खोल दिया।

क्यों? देखिए न ! हम और आप अपने शरीर का भार किस पर डाल देते हैं? पादुका पर डाल देते हैं, जूते पर डाल देते हैं। शरीर कितना बड़ा है और जूता कितना छोटा, किन्तु छोटे से जूते के ऊपर सारे शरीर का भार दे दिया गया। किसी कवि को जूते के ऊपर दया आ गई, इतने भारी भरकम हम हैं और इस छोटे से जूते को कितना कष्ट हो रहा है ! उसने जूते से कहा कि हम इतना बड़ा भार तुम्हारे ऊपर लाद रहे हैं, तुम्हें कष्ट तो बहुत हो रहा होगा, पर क्षमा करना। जूते ने हँसकर कहा कि आप इस भ्रम में मत रहिए, जब आप चलेंगे, तो पता चलेगा कि मैं आपको ढो रहा हूँ कि आप मुझे ढो रहे हैं। इसका अर्थ है कि जूता पहनकर आप चलें, तो जूता आपको थोड़े ही ढो रहा है, आप ही जूते को ढो रहे हैं। भरतजी ने कहा कि प्रभु, आपने भार का रहस्य बता दिया। देखने में तो लगेगा कि भार भरत के ऊपर है, पर ढोना तो आपको ही है। ऐसी स्थिति में आपने जो पादुका दी, वह भक्ति की है। ज्ञानी कहते हैं, सर्वत्र राम को देखो रामराज्य बनेगा। भक्त यह कहते हैं कि व्यक्ति केवल सेवा करनेवाले के रूप में दिखाई देगा, किन्तु वस्तुत: भगवान ही सारा भार उठाये हुए हैं। जब यह अनुभव होगा, तब रामराज्य बनेगा। अगर कर्म की दृष्टि से विचार करके देखें, तो या यह मान लीजिए कि सब कुछ भगवान हैं या यह मान लीजिए कि सारा भार भगवान के ऊपर है। तीसरी बात प्रभु ने भरत से यह कही कि भरत, पादुका को तुमने अगर पैर में पहन लिया होता, तब तो आधार होता, तुमने उसे सिर पर रख लिया, तब तो वह भार ही हो गया। तो श्रीभरत ने कहा कि प्रभु, पादुका के तो कुछ नियम हैं। क्या? आप अपने पैर में पादुका पहन लीजिए और अंधेरे में कहीं उतार दीजिए और बाद में उठकर जाते समय आप धोखे से दूसरे के जूते में पैर डालें तो –

बिन आँखिन की पानही लखि पहिचानत पायें।

जूता तुरत पहचान लेता है, यह पैर मेरे स्वामी का नहीं है और जूता संकेत कर देता है कि हम आपके नहीं है। सभ्य व्यक्ति होगा, तो छोड़ देगा और और वह उसी के लिए आया होगा, तो वह तो बलात् उसी जूते में पैर डालकर उसे लेकर ही जायेगा। भरतजी ने कहा, प्रभु, अयोध्या के राजपद के लिए आपने पादुका दी, अगर भरत उसमें पैर डाल देगा, तो वह चोर ही माना जाएगा। इसलिए, भगवान हैं, यह मान लीजिए। इन शब्दों के साथ रामराज्य के प्रसंग को विराम देते हैं।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपालु मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल।।
७/१२४/क

○○○ (समाप्त)

हर मनुष्य में स्वार्थ शैतान का अवतार है। स्वार्थ का एक-एक अंश, अंशत: शैतान है। एक ओर से तुम स्वार्थ को हटा लो और दूसरी ओर से ईश्वर प्रविष्ट हो जायेगा। – स्वामी विवेकानन्द

माँ नर्मदा जयन्ती विशेष

नमामि देवि नर्मदे

डॉ. राघवेन्द्र गुमाश्ता, भोपाल

स्वप्न-दर्शन से स्वप्न-द्रष्टा बन जाने की यात्रा नर्मदा कृपाप्रसादामृत ही हो सकता है। नमामि देवि नर्मदे का

जयोद्घोष अनन्य अविरल श्रद्धावनत मानव शृंखलाओं की युगातीत परम्पराओं की विनम्र पुनरावृत्ति है, जो ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति की अद्भुत सर्जक, प्रदर्शक एवं प्रकाशक भी है। नमामि देवि नर्मदे त्रिशब्द रूप ही नहीं, त्रिदेव को प्रणम्य विनीत दर्शन है, उन गम्भीर किन्तु उत्ताल तरंगित नर्मदाजी की जल-धाराओं का, जो अपने दोनों तटों पर एक-सा ही दिव्य वरदान प्रदान कर रही हैं। नर्मदा के तट पर ही तो शिव अवढर दानी हुए हैं। दिव्यामृतपेयधारी दिव्यप्रकाशित एवं दिव्यता प्राप्त नर्मदा के जल-बिन्दुओं के मानव शरीर पर पड़ जाना ही शिव कृपा का प्रमाण, प्रसाद एवं परिणत लब्धि है। शिव तो स्वयं ही कृपासागर हैं, उनसे क्या माँगोगे, क्यों माँगोगे? सब कुछ तो झोली में आप ही आप भर जायेगा, आज भी कल भी। कमलदल नेत्रवती सरिताश्रेष्ठ के विविध रूप-दर्शन ही तो प्रार्थना, सजल आराधना, स्मृति एवं परिक्रमा के लोभप्रसाद हैं।

महर्षि वेदव्यास के शब्दधन-समुच्चयोद्भूत सतत प्रणम्य भावधारा ही इस धरा की अमर जलराशि प्रवाहरूप नर्मदा-नमस्कारोन्मुख जीवपंक्ति-करतलबद्धता है।

चन्द्रमुखी नर्मदा तो शिव प्रतिबिम्ब हेतु स्निग्ध जल दर्पण हैं, जो दिव्यचक्षुधारी मुनियों, देवों एवं गन्धर्वों को प्रतिदिन प्रतिपल नर्मदा में दृष्टिगोचर होते हैं। प्रात:कालीन बेला में नर्मदा स्नान मानों देव स्नान ही है, देवलोक में स्थान के आरक्षण का एक सुदृढ़ आश्वासन है। शेष तो अप्रयास ही श्रेष्ठिपदप्राप्तिधारक हो जाते हैं। शिव भोले के भक्तजनाश्रय होने से भी तो नर्मदा, भक्त को अप्रार्थित अविरल कृपा, सिद्धि, समृद्धि, ज्ञान, ध्यान एवं सम्मान प्रदात्री हैं। पन्नगभूषणसुता की समयजयपूर्णता शुद्धधारत्व की स्वयंसिद्ध अमूर्त मूर्ति हैं। जय देवि नर्मदे, जयति जय नर्मदे, नर्मदे हर, हर हर नर्मदे, नर्मदे, शिव हर नर्मदे, हर शिव नर्मदे, नामामि देवि नर्मदे, जो कहो, सभी नाम नर्मदा को साष्टांग नमस्कार ही तो हैं। नर्मदा नाम ही महामन्त्र है, जीवन रक्षक है, ताप-पाप नाशक है, कलियुगघोर विनाशक है एवं शिवसायुज्य प्राप्ति हेतु सरल व प्रामाणिक कारक भी।

नर्मदाष्टक स्वर्णिम आभामय शब्द समुच्चय है। हो भी क्यों न ! ये आदि शंकराचार्य की वाणी ही नहीं, उन्हें हुए दर्शन हैं, ये नर्मदा दर्शन के शब्द रूप में अभिव्यक्ति है। भाव की शब्दाभिव्यक्ति स्वाभाविक होकर अमरता को प्राप्त होती ही है। भाव तो उड़ता चलता है। रुकता कहाँ। मात्र वहीं, जहाँ से चला होगा कभी। गोलार्धभ्रमणपूर्णता ही तो भाव संतृप्तिकारण है। जहाँ विरलता है, वहाँ सघनता का त्वरण कभी अवरुद्ध न हुआ। भावातीतानन्द की प्राप्ति भावप्रधानता की अटूट धराभूमि को सलक्ष्य साष्टांग प्रणाम से ही हुई है। ऐसा होने पर ही शब्द मंत्र हो जाते हैं और मंत्र शब्द। प्रणम्य प्रार्थना सिद्धि की स्वाभाविक जनक है ही। नर्मदाष्टक सिद्धों, योगियों, भक्तों, परिक्रमा यात्रियों एवं दर्शनानुरागियों का जिह्वाभूषण,

भक्तिप्रदाता एवं अहैतुकी कृपा मंत्र का सहज उपलब्ध पथदर्शक तारक तत्त्व है। यह वह घनीभूत अभिव्यक्ति है, जो नमामि देवि नर्मदे द्वारा कोशिकामय सूक्ष्म कोष का अमृतमय सागर है। सदैव से, सदैव के लिए तथा सदैव दैवीशक्तियुक्त पीयूष कलश है। तत्त्व ज्ञान प्राप्ति स्थल ही तो नर्मदाष्टक के प्रकटीकरण का स्रोत हो सकता है। इसके प्रत्येक शब्द में प्रकाशित आदि शंकराचार्य की वाणी जन-समुद्र को अनवरत, अप्रयास भवबन्धनउन्मुक्त कराती जा रही है। सप्रयास मुक्ति भी कोई मुक्ति है। नर्मदा का नाम ही अनायास मुक्ति एवं मुक्ति का आवासविनिश्चय है।

नर्मदा तट पर पारस पत्थर मिलना एक घटना नहीं हो सकती। नर्मदा तट की प्रत्येक सुघटना पुनरावृत्ति का सुनिश्चित आश्वासन है। नर्मदा के हर पत्थर का शंकर होना क्या पारस प्राप्ति नहीं? कैसा होता है, पारस? द्रोणाचार्यजी को प्राप्त मणि क्या स्वयंभू शिवलिंग नहीं थे? नर्मदा के तल में शंकर मानो लेटे हुए हैं। करोड़ों शंकर, एक साथ। हर भक्त के लिए, एक शंकर। भक्त के अपने शंकर। शंकर भोले हैं। सबके लिए उपलब्ध हैं, एक साथ, एक रूप, अनेक रूप। यहाँ भी, वहाँ भी, वही शंकर। नर्मदा के कंकर, हमारे शंकर। वरदान है, नर्मदा दर्शन, स्नान, ध्यान निमित्त आये सभी श्रद्धालुओं को। आएँ, शंकर हुए नर्मदेश्वर को दाहिने हाथ में लेकर एक बार उठाएँ, फिर दक्षिण से भय कैसा। नर्मदा जल से इन नर्मदेश्वर का अभिषेक करें और फिर वहीं नर्मदा जी में समर्पित कर दें। नर्मदा के शिव को प्रणाम, नर्मदा के शिव, नर्मदा को भेंट। पिता का परिचय पुत्री ही करा सकती है और पुत्री के लिए पिता से अधिक निश्चल अनुरागी कौन है ! शिवसुता नर्मदा शिव के वचन की कालातीत रक्षक हैं। नर्मदा जी को प्रणाम करने के साक्षी प्रति क्षण नर्मदा तट पर घाट पे, जंगल में, मैदानों में और प्रपातों में भी उपस्थित हैं, समस्त अप्सराओं, योगिनियों, यक्षिणियों, बेतालों, गंधर्वों एवं साधकों के दृश्य-अदृश्य रूपों में। जो कहने से जीवन सफल हो जाय, जो कहना सुगम हो, जो कहना चिर आह्लादकारी हो, जो पापापहारी हो, वही कहें, हम आप एवं सब कोई। आज भी, कल भी, जीवन की अन्तिम साँस में भी – त्वदीयपादपंकजं नमामि देवि नर्मदे। त्वदीयपादपंकजम्, नमामि देवि नर्मदे। त्वदीयपादपंकजम्, नमामि देवि नर्मदे। ○○○

कविता

जयतु विवेकानन्द महाप्रभु

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

धर्म ज्ञान के तुम्हीं दिवाकर, सकल जगत के तुम अभिमान।
जयतु विवेकानन्द महाप्रभु, करता हूँ मैं तव गुणगान ।।
भोगवाद के दैत्य-दलन को, आये तुम प्रभु कृपानिधान।
त्याग धर्म की महिमा गाकर, तुम रत हुये जगत-कल्यान ।।
ध्यानपरायण नर-नारायण, सेवाव्रत के तुम आख्यान ।
सकल जगत के मोह निवारक, तुम इस जग के हो वरदान।।
तुम ज्ञानभक्ति के स्वामी, कर्मयोगि तुम हो द्युतिमान ।
मेरे उर में सदा बसो प्रभु, निरत रहूँ मैं तेरे ध्यान ।।

कविता

स्वामी विवेकानन्द

सदाराम सिन्हा 'स्नेही'

युगधर्म का पथ बताया सारे जग को विवेकानन्द ।
प्रभु भाव भक्ति से मिलता-अन्तर्मन अलौकिक आनन्द ।।
वेदों के ज्ञान विज्ञान को, देश विदेश तक पहुँचाया ।
गीता के कर्मयोग को कर्मयोगी बनकर अपनाया ।।
बहु शास्त्रों के सारतत्त्व से युग-मानस किया अमंद।।१।।
शिकागो धर्मसभा में जाकर भारत का मान बढ़ाया ।
यूरोपिय देशों में जाकर युग चेतना को जगाया ।।
सर्वधर्म समभाव युक्ति से दूर किया जगतदुख द्वन्द्व।।२।।
साक्षरता का संदेश दिया, बहुभाषी ज्ञानी बनकर ।
भोगविलास का त्याग किया, ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर ।।
दीन-दुखी सेवा करते, पाते जीवन में सुखानन्द ।।३।।
छुआछूत को अभिशाप बताया, जीवन के प्रगति पथ में ।
रूढ़िवाद को बाधक बताया, समाज उन्नति के मग में ।।
नारी शक्ति है महान, विश्व विकास उन्नयन मकरंद ।।४।।
राज-नर्तकी से माफी माँग, लघु गुरु का परिचय दिया ।
राजा अजीत के त्याग को देश–विदेश में दृष्टांत दिया ।।
खेतड़ी की धरती धन्य हुई, धन्य हुए जन वृन्द ।।५।।

बच्चो, परीक्षा से परेशान मत हो !

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, आज हम एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय 'परीक्षा' के बारे में बात करेंगे। अक्सर परीक्षा हमें डराती है और हम डरकर परेशान हो जाते हैं। क्यों न हम परीक्षा की पूरी तैयारी के साथ सहजता से सामना करें, जिससे हमारा परिणाम बहुत अच्छा आये, स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ दत्त) की तरह, जो अपनी परीक्षा का आनन्द लेते थे। नरेन्द्र के जीवन की एक घटना बहुत प्रेरणादायी है। नरेन्द्र के दो मित्रों ने प्रश्न किया, ''नरेन! परीक्षा के दिन कहाँ तो तुम जो एकाध कमियाँ हैं, उन्हें दूर कर लेते, किन्तु तुम्हारा तो सब विपरीत ही दिखता है ! बाहर निकलकर आनन्द कर रहे हो !'' नरेन्द्र ने उत्तर दिया, ''हाँ, वही तो कर रहा हूँ। दिमाग को साफ रख रहा हूँ। मस्तिष्क को थोड़ा विश्राम देना चाहिए, नहीं तो इन दो घंटों में माथे में जो घुसाऊँगा, वह पिछले सब पढ़े हुए को अस्त-व्यस्त कर देगा कि नहीं ! इतने दिनों तक पढ़-पढ़कर जो नहीं हुआ, वह क्या और दो घण्टों में होगा? नहीं होगा। परीक्षा के दिन सुबह के समय केवल आनन्द, केवल आनन्द कर शरीर-मन को थोड़ी शान्ति देनी होगी। घोड़े की दौड़ आने पर उसकी मालिश कर उसे ताजा कर देना होता है। मस्तिष्क को भी वैसे ही करना होता है। तो आओ बच्चो, हम परीक्षा को सरल बनाते हैं।''

परीक्षा के समय हम इतने परेशान हो जाते हैं कि हम ठीक से सो नहीं पाते, ठीक से खा नहीं पाते और जब सोकर उठते हैं, तो भी थकान अनुभव होता है। इसे हम कुछ उदाहरण और उपाय से समझते हैं।

मैं एक दिन जन्मदिन के उत्सव में गई थी। वहाँ कुछ अलग तरह का खेल खेला जा रहा था, जिसमें सबको एक पसन्दीदा खिलौना उठाना था। कुछ लोग शिकायत कर रहे थे कि हमें जो खिलौना चाहिए वह उठा लिया गया है। मैंने अपने लिये चिम (एक प्रकार का खिलौना) उठाया। फिर सबको एक बराबर का गिलास दिया गया और बोला गया कि अपने-अपने खिलौने को गिलास के अन्दर डालना है, तो मैं अपना खिलौना इस गिलास में नहीं डाल पा रही थी। कुछ लोगों का खिलौना बहुत नरम (लचीला) था तो वे डालकर (गिलास में) दूसरों पर हँस रहे थे। तो मुझे लग रहा है कि यह हमेशा मेरे साथ ही क्यों होता है? सबका खिलौना सफेद (गोरा) है पर मेरा काला क्यों? हमेशा ऐसा मेरे साथ ही क्यों होता है? इस कहानी को बताने का कारण यह है कि कैसे हम परीक्षा के तनाव से बाहर निकलें। तो यह जो खिलौना है, वह हमारी तरह है और जो ग्लास है, वह गणित या आई.आई.टी. की परीक्षा है। एक प्रचलित कथन है – ''प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में महान है, पर यदि हम एक मछली को पेड़ पर चढ़ने को कहेंगे, तो वह पूरा जीवन स्वयं को मूर्ख ही समझेगा।''– अल्बर्ट आइंस्टीन।

चलो बच्चो, हम क्यों को क्या में बदल देते हैं। यह हमेशा मेरे साथ ही क्यों होता है, इसके स्थान पर हम यह पूछें कि इसका उपाय क्या है? मुझे क्या आवश्यकता है? तो मैं इसके लिए आपको तीन उपाय और एक बोनस टिप बताऊँगी, जो मैंने कुछ संन्यासी जैसे गौतमबुद्ध तथा अन्य की पढ़ाई से सीखा है।

१. पहला – सही पात्र लो। यह हम सुना करते हैं ईमानदार रहो। क्या हम विश्वास, धैर्य, साहस और अपने क्रोध के स्वयं स्वामी हैं या कोई और हम पर अपना वश चला रहा है। जीवन एक विरोधाभास है, जब हम अपने जीवन को सम्हालने की कोशिश करते हैं और हममें नियन्त्रण की कमी होना भी एक सबसे बड़ा कारण है तनाव होने का। तो आइये देखते हैं कि हम क्या नियंत्रण कर सकते हैं, जो हमारे वश में है और क्या नहीं। जो हमें नियन्त्रण में रख सकते हैं वे हैं हमारी – तैयारियाँ, समय, प्रयास, स्वभाव, प्राथमिकता और इच्छा। ये सब हमारे लक्ष्य हैं और जो हमारे नियंत्रण में नहीं है, वे हैं – रैंक (स्थान), स्कोर (अर्जन), गोल्ड मेडल, एडमिशन। ये सब सपने हैं, लक्ष्य नहीं। अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करके अपने लक्ष्य का सपना ब्रह्माण्ड पर छोड़ दो, वह उसे पूरा करेगा।

२. मस्तिष्क पर केन्द्रित होना – मुझे पता है कि आप किस तरह से उलझे रहते हैं, जैसे समय निकलता जा रहा है। हारने वालों के लिए कोई स्थान नहीं है। मैं अपने भूतकाल के कारण ही तनाव में रहता हूँ। जो गलतियाँ हुई हैं, मैं क्या करूँ? पर याद रखें 'एक कागज का पन्ना आपका भविष्य तय नहीं करता। आपका कौशल, आपका ज्ञान ही आपकी

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

भगवान के लिये कुछ समय निकालो

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हम भगवान को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? जैसे छोटा बच्चा माँ नहीं दिखी, तो रोता है, माँ को देखने लिए व्याकुल हो जाता है, वैसे ही हमें भगवान के लिये व्याकुल होना चाहिये। जैसे बच्चा खेलता रहता है और माँ काम करते-करते अपने बच्चे को देखती रहती है, वैसे भगवान भी हमें देख रहे हैं। हमारे मन में ठाकुर जी के सभी स्थान महत्वपूर्ण लगने चाहिए। हमें भी ऐसा कुछ करना है कि भगवान हमारे पीछे पड़ें। भगवान दो आदमी के पीछे पड़ जाते हैं। पहला दुष्ट बुद्धिवाले के पीछे और अपने भक्तों के पीछे। भक्तों का हृदय भगवान का प्रिय स्थान है। जब भक्त उन्हें प्रेम से पुकारते हैं, तो भगवान दौड़कर आते हैं।

हमें यह देखना है कि हम अपने २४ घंटों के जीवन में भगवान के लिए कितना समय देते हैं? भगवान हमारे सामने खड़े हैं कि कब इनके हृदय में मुझे स्थान मिले, पर हम संसार में इतने फँसे हैं कि भगवान की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। जैसे दाँत के दर्द से हमारा मन सतत उसमें जाता रहता है, वैसे ही हमारा मन सतत भगवान की ओर जाना चाहिए।

हम सबके मन में लोभ की वृत्ति है। यह लोभ हमें भगवान से मिलने नहीं देता। तो इसको कैसे मिटावें? जब हमारे मन में लोभ आये, उसी समय भगवान की शरण में जाना चाहिए और उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान ने जो कुछ दिया है, उसमें ही सन्तुष्ट रहने का प्रयास करना चाहिये।

हमारा हृदय आकाश के समान विशाल होना चाहिए। हमारे हृदय में भगवान के लिए उच्च स्थान होना चाहिए। जीवन में एक क्षण भी भगवान के नाम के बिना न रहें। इसके लिए दैनिक जीवन में नियम बनाकर भगवान को याद करते रहना चाहिये। भगवान के शरणागत होकर रहने से भगवान कभी हमें बुरा फल नहीं देते। किन्तु हम भगवान की ओर देखते तक नहीं हैं। भगवान कहते हैं, भाई, चौबीस घंटे मैं तुम्हारे पास खड़ा हूँ, पर तुम्हारा मेरी ओर ध्यान ही नहीं है। मोह से भरी वासनाओं और सांसारिक इच्छाओं के कारण हमारा मन भगवान की ओर नहीं जाता। जब भगवान की ओर मन जायेगा ही नहीं, तो भगवान कैसे कृपा करेंगे? इसलिये कोई भी काम करने से पहले भगवान को याद करो। भगवान का नाम सतत लेने से संसार की इच्छायें कम हो जायेंगी और भगवान के प्रति भक्ति बढ़ेगी। पूरा जीवन भगवान के शरणागत होकर रहेगा। उससे शान्ति और आनन्द मिलेगा। ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

शक्ति है। अपने भूतकाल में हुई गलतियों के लिये पश्चाताप न करें। एक सीख की तरह उसे स्वीकार करें।

३. अपने पात्र को फैलाओ – (अ) इसके लिए अपने ऊपर आशीर्वाद और कृतज्ञता को एक दैनन्दिनी में लिखो। (ब) स्वयं को याद दिलाते रहो कि तुम कितने प्रतिभावान और श्रेष्ठ हो, जो अच्छा करते और सोचते हो (स) अपने मित्रों की संख्या बढ़ाओ, जो तुम पर विश्वास करते और तुमको प्रेरित करते हैं। उनसे दूरी रखो, जो तुम में कमी निकालते और तुमको पसन्द नहीं करते। (द) अपना उद्धेश्य बढ़ाओ, उनके बारे में सोचो, जिन्हें जीवन बहुत कम में गुजारा करना पड़ता है, उनकी मदद करो। (इ) अपनी चेतना बढ़ाओ, तुम आध्यात्मिक सम्बन्ध बढ़ाओ, जिससे आपको शक्ति मिलेगी अपने सभी काम अच्छे से करने के लिए।

टीप - एक समय में एक ही कार्य करो। हमारा मन एक बन्दर की तरह है, जो कभी भूत में, तो कभी भविष्य में पहुँच जाता है। इसे नियंत्रण में करके केवल वर्तमान में लगाना है। जब भी तुम्हारा मन इधर-उधर भटके, तो रूककर उसे स्वयं वश में करो, उसे वर्तमान में लाओ।

इसके लिए कम-से-कम ७ घण्टे की नींद, खाने में विटामिन्स और पोषक तत्त्व, प्रतिदिन १० मिनट सूर्य किरण का दर्शन, कुछ आसन-प्राणायाम, व्यायाम और मुस्कुराते रहो। बच्चो, इन सबके साथ अपने सबसे प्यारे माता-पिता को अपनी कोई भी परेशानी बताना और उनसे बातचीत करके समस्या का समाधान करना। ○○○

सबकी श्रीमाँ सारदा

स्वामी चेतनानन्द, अमेरिका

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज वेदान्त सोसाइटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। विवेक ज्योति के पाठकों के लिये उनके अँगेजी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद भोपाल के लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया ने किया है।)

(गतांक से आगे)

मुसलमानों की माँ

कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति पूर्णता की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। ईशा ने कहा था, ''इसलिए तुम पूर्ण बनो, जैसे स्वर्गवासी परम पिता पूर्ण हैं।'' केवल ईश्वर ही पूर्ण हैं और सभी प्राणियों में विद्यमान पूर्णता को प्राप्त करना धर्म का लक्ष्य है। मनुष्य छोटी या बड़ी गलतियाँ करता है और वे गलतियाँ हमारी शिक्षक हैं। वे मानव को उन्नत बनाती हैं और लोगों को उनकी यात्रा में प्रगति करने मे सहायक होती हैं। लेकिन व्यक्ति तब तक कोई प्रगति नहीं कर पाता है, जब तक वह अपनी गलतियों के बारे में ही सोचते रहता है या अपने पापों के लिए रोते रहता है। श्रीरामकृष्ण ने कहा था – ''यदि तुम किसी व्यक्ति के लिए ९९ अच्छा काम कर दो और एक बुरा हो जाये, तो वह तुम्हारे एक बुरे काम को याद रखेगा तथा आगे तुम्हारी कोई परवाह नहीं करेगा। लेकिन यदि तुमसे ९९ पाप हो जाये, किन्तु एक अच्छा कार्य ईश्वर की सन्तुष्टि के लिये कर दो, तो वे ईश्वर तुम्हारे सभी पापों को क्षमा कर देंगे। मनुष्य के प्रेम और ईश्वर के प्रेम में यही अन्तर है।''

एक दिन एक मुसलमान ने माँ सारदा को कुछ केले दिए और बोला – ''माँ, मैं ये ठाकुर के लिए लाया हूँ। क्या आप इसे स्वीकार करेंगी?''

माँ ने उत्तर दिया, ''मैं अवश्य स्वीकार करूँगी।'' अपने हाथ फैलाकर माँ ने कहा, ''इन्हें मुझे दे दो। तुम इन्हें ठाकुर के लिए लाये हो। मैं इन्हें अवश्य लूँगी।''

माँ की एक सेविका वहाँ उपस्थित थी और उसने इसका विरोध किया – ''माँ, हम लोग जानते हैं, यह एक चोर है। उसकी दी हुई वस्तु आप ठाकुर को कैसे अर्पित करेंगी? उसके विरोध को ध्यान दिए बिना माँ ने उस व्यक्ति को मुरमुरा और मिठाई दिया। उसके जाने के बाद माँ ने अपनी सेविका को डाँटा और कठोरता से बोलीं – ''मैं जानती हूँ, कौन अच्छा और कौन बुरा है।''[१३]

परमानन्दपुर (सिरोमनीपुर से लगा हुआ एक गाँव) का राशनअली खान १४ वर्ष की आयु में माँ से मिला था और उसने माँ से सम्बन्धित कुछ घटनाओं के बारे में बताया, जो उसने अपने चाचा मफेती शेख और हमेदी शेख से सुना था। वे लोग अपना जीवन-यापन हिन्दुओं के खेतों में कृषि कार्य करके किया करते थे, उनका बैलगाड़ी का भी व्यापार था। माँ सारदा जब जयरामबाटी से कोआलपाड़ा या विष्णुपुर या कोआलपाड़ा से जयरामबाटी यात्रा करती थीं, तब उनकी बैलगाड़ी किराए पर लेती थीं। माँ के भक्त भी उनकी बैलगाड़ियाँ किराए पर लेते थे, जिससे मुसलमान परिवार कुछ धन अर्जित कर सकें। बैलगाड़ी हाँकनेवालों की पत्नियाँ कभी-कभी माँ के पास आती थीं। माँ उन्हें ''बीबी-बहू बोलती थीं। माँ उन्हें खिलाती थीं और उनके परिवार की कहानियाँ सुनती थीं।''

जयरामबाटी में बाजार नहीं था। बदनगंज और कोतलपुर में बड़े बाजार थे और शिरोमनीपुर में छोटा बाजार था। मुसलमानों के गाँव के लगभग सभी लोग सब्जियाँ उगाते थे। जैसे माँ सारदा के दर्शन के लिए बहुत लोग आते रहते थे, मफेती उनके लिए प्राय: कई प्रकार की सब्जियाँ लाता था, जैसे कुम्हड़ा, लौकी, कच्चू (एक प्रकार का कंद) और मुनगा। ठंड के मौसम में कुछ मुसलमान माँ के लिए खजूर का रस और शीरा लाते थे। माँ से पैसा लेने में वे लोग आना-कानी करते थे, लेकिन माँ यह कहते हुए जोर देती थीं – ''बेटा, तुमने कठिन परिश्रम से जो वस्तु पैदा की है, उसका सही मूल्य तुम्हें अवश्य स्वीकार करना चाहिए।'' माँ उनको पैसा देतीं, ठाकुर का प्रसाद खिलातीं और उन्हें मुरमुरा और मिठाई देती थीं।

शबीना बीबी नामक एक प्रौढ़ मुसलमान महिला, कोतलपुर से आम और कटहल खरीदती और उसे जयरामबाटी में बेचती थी। माँ सारदा प्राय: उससे फल लिया करती थीं। माँ सारदा उसे चाची कहती थीं। मुसलमानों के त्यौहार के समय में माँ शिरोमनीपुर के दरगाह में चढ़ावा

भेजती थीं। एक दिन मफेती ने पूछा – ''माँ, आप हिन्दू हैं। आप मुसलमानों के त्यौहार के समय मिठाई और अन्य उपहार क्यों भेजती हैं?''

माँ ने उत्तर दिया – ''क्या ईश्वर अलग-अलग हैं? सब एक हैं। देखो ठाकुर ने इस्लाम धर्म की साधना की थी और मुसलमानों के समान प्रार्थना की थी। ईश्वर के नाम अनेक हैं, पर वे एक हैं।

एक बार मफेती शेख को माँ के दैवी स्वरूप का दर्शन हुआ, उस समय से उसे विश्वास हो गया कि माँ सारदा एक पीर या संत थीं।

ईसाइयों की माँ

माँ सारदा को भाषा का ज्ञान नहीं होने के उपरान्त भी माँ ने साराबुल, जोसेफिन मैक्लाउड, बेट्टी लेगेट, लारा ग्लेन (सिस्टर देवमाता), मारग्रेट नोबल (सिस्टर निवेदिता), क्रिस्टीन ग्रीन-स्टीडेल, अलबर्टा स्टूरजेस माँटेग्यू (काउन्टेस आफ सेंडविच) और अन्य महिलाओं से संवाद स्थापित किया था। उनके मातृत्व, प्रेम और स्नेह ने धर्म और संस्कृति, भाषा और शिक्षा-दीक्षा के सभी बंधनों को तोड़कर इन महिलाओं को अपना बना लिया।

माँ सारदा ने कुछ पश्चिमी भक्तों, जिनमें पुरुष भी थे, उन्हें दीक्षा दी, इनमें से बाद में दो लोग संन्यासी हो गए। श्रीमाँ ने १९११ में न्यूयार्क के चार्ल्स जान्सटन को मद्रास में दीक्षा दी, बाद में स्वामी सारदानन्द से उसने ब्रह्मचर्य दीक्षा ली और ब्रह्मचारी अमृतानन्द हुए। उसी वर्ष माँ सारदा ने कोर्नेलियस जे. हेजब्लाम को दीक्षा दी, जो गुरुदास के नाम से जाने जाते हैं। उसकी दीक्षा के समय माँ ने उससे कहा था कि वह हमेशा मंत्र का जप कर सकता है, लेकिन यदि वह सच में कुछ उपलब्धि करना चाहता है, तब उसे मंत्र के अर्थ पर मन को एकाग्र करके निश्चित समय पर ध्यान करना होगा।

बाद में गुरुदास से पूछा गया कि उसे दीक्षा के समय कैसा अनुभव हुआ, क्योंकि वह बंगला नहीं समझता था और माँ सारदा अंग्रेजी नहीं बोल सकती थीं। उसने समझाया – ''जब बच्चा अपनी माँ की गोद में बैठता है, तब वह किस भाषा में बात करता है? वैसा ही मैंने उस समय अनुभव किया, मानों सम्पूर्ण जगत विलीन हो गया है और मैं एक छोटे बच्चे के समान अपनी माँ की गोद में बैठा हूँ। मैंने अति आनन्दित अनुभव किया और मेरी समस्त शंकाएँ समाप्त हो गईं।'' वर्ष १९२३ में गुरुदास को स्वामी अभेदानन्द ने संन्यास दीक्षा बेलूड़ मठ में दी और वे स्वामी अतुलानन्द हुए।

लारा ग्लेन (सिस्टर देवमाता)

श्रीमाँ ने न्यूयार्क के डा. हेलाक और उनकी पत्नी ग्रेहेलाक को भी दीक्षा दी। सिन्धुनाथ पांडा ने प्रत्यक्षदर्शी विवरण प्रस्तुत किया – ''एक दिन माँ संध्या में उद्‌बोधन के अपने कमरे में बैठी थीं। डॉ. और श्रीमती हेलाक उनके सामने बैठे थे। डॉ. कांजीलाल और मैं उपस्थित थे, गिरीश घोष दुभाषिए का काम करते हुए दरवाजे के किनारे बैठे थे। श्रीमती हेलाक बोली – माँ, मैं आपकी बेटी हूँ।' माँ ने उत्तर दिया, 'हाँ, तुम मेरी बेटी हो।' डॉ. हेलाक ने पूछा – माँ, मुझे इस बात की जानकारी कब होगी कि आप जगन्माता हैं? ''माँ ने उत्तर दिया – जैसे तुम यहाँ आए हो, समय आने पर तुम समझ जाओगे। मैं उन्हें पारिवारिक परिवेश में देखकर वार्तालाप सुनकर द्रवित हो गया।''

Sister Nivedita, Mrs. Sevier, Lady J. C. Bose, Sister Christine

पश्चिम की एक महिला एक दिन माँ से मिलने उद्‌बोधन भवन आई। जब वह बात कर रही थी, तब माँ मुस्कुरा रही थीं और सिर हिलाकर संवाद कर रही थीं। जब वह महिला चली गई, तब माँ ने भक्तों से कहा – ''मुझसे बात करने की दृष्टि से उसने बाल्य शिक्षा (बंगाली की एक प्रायमरी पुस्तक) की एक प्रति खरीदी थी और बंगला सीखी। उसने सुना था मैं प्रात: चार बजे उठती हूँ, इसलिए वह भी चार

बजे उठने लगी।'' वे लोग धन्य हैं, जो माँ के सम्पर्क में आए और माँ का आशीर्वाद प्राप्त किया।

माँ के कुछ भारतीय भक्तों में देशभक्ति की तीव्र भावना थी और वे अँग्रेजों से नहीं डरते थे। उनमें से एक से माँ ने कहा, ''बेटा, तुम और तुम्हारे दूसरे भाई (अँग्रेज लोग) आपस में लड़ सकते हो, लेकिन वे भी मेरे ही बच्चे हैं।

अँगरेजी शासन के सम्बन्ध में श्रीमाँ के विचार

माँ सारदा के जीवन-काल में भारत अंग्रेजों द्वारा शासित था। जगन्माता के रूप में वे अपने अंग्रेज बच्चों को प्यार करती थीं, लेकिन अंग्रेज शासन के अन्याय के प्रति आवश्यक होने पर वे अपना विरोध व्यक्त करती थीं। जैसे कि माँ के कुछ शिष्य पूर्व में भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन से जुड़े हुए थे। पुलिस की दृष्टि माँ के घर पर रहती थी। इससे माँ अप्रसन्न थीं। १९१७ में माँ सारदा जयरामबाटी के अपने नए मकान में थीं। उनके भाई काली, ब्रह्मचारी बरदा और दूसरे लोग बैठक के बरामदे में थे। उन लोगों

Olea Bull, Betty Leggett and Josephine MacLeod at the Holdts Hotel, Bergen, Norway, after dinner with King Haarkon and Queen Maud. July 23, 1906.

ने दुखद समाचार सुना। देबेन घोष नामक एक ग्रामीण की पत्नी और बहन दोनों का नाम सिंधुबाला था। उनमें से एक राजनैतिक रूप से संदिग्ध थी। देबेन की बहन गर्भवती थी और प्रसवकाल निकट था।

बाँकुरा की पुलिस ने दोनों स्त्रियों को गिरफ्तार कर लिया और उनके गाँव जूथबेहार से पुलिस स्टेशन तक जबरन पैदल चलाकर ले गए। पुलिस से कहा गया कि वे गलत कर रहे हैं। स्त्रियों को पुलिस स्टेशन तक जाने के लिए उपयुक्त साधन का सुझाव दिया गया, लेकिन पुलिस ने कोई ध्यान नहीं दिया। जमानत की अर्जी निरस्त कर दी गई और स्त्रियों को कई प्रकार से अपमानित किया गया। काली, माँ

श्रीमाँ सारदा के संग सिस्टर निवेदिता

के पास गए और उन्हें सारी बातें बताईं।

माँ सारदा थर्रा उठीं और उनका चेहरा लाल हो गया। उन्होंने अत्यन्त क्रोध भरे स्वर से कहा – ''इसका क्या अर्थ है? क्या यह सरकार के आदेश से हुआ है या सम्बन्धित चालाक पुलिस अधिकारी का कार्य है? हमलोगों ने महारानी विक्टोरिया के शासनकाल में निरपराध स्त्रियों पर इस प्रकार के अत्याचार के बारे में नहीं सुना। यदि शासन इसके लिए उत्तरदायी है, तब यह अधिक दिन नहीं चलेगा। क्या वहाँ आसपास कोई युवक नहीं था, जो पुलिस वालों को तमाचा मारकर लड़कियों को छुड़ा लेता? देबेन के भाई लोग कहाँ थे?''

माँ का देश प्रेम

स्वामी ईशानानन्द स्मरण करते हैं – एक बार दुर्गापूजा के समय माँ ने अपने भतीजे-भतीजियों के लिए कपड़ा खरीदने की जिम्मेदारी मुझे दी। मैंने मोटे देशी कपड़ों से बना वस्त्र खरीदा, लेकिन लड़कियों को वह पसन्द नहीं आया। वे महीन अँगरेजी कपड़ा चाहती थीं। मैंने खीजकर उनसे कहा – वे वस्त्र इंग्लैंड में बनते हैं। तुम लोग क्या समझते हो, मैं वह विदेशी वस्तुएँ खरीदूँगा?' माँ वहाँ बैठी थीं और सारी बातें सुन रही थीं। फिर माँ ने मुस्कुराते हुए कहा – ''बेटा, अँगरेज लोग भी मेरे बच्चे हैं। मुझे सबके साथ रहना होगा। मैं पृथक् नहीं हो सकती। जाकर उनके पसंद के कपड़े ले आओ। बाद में मैंने देखा कि जब भी विदेशों की बनी वस्तु लेनी होती, तो माँ मेरी जगह दूसरे को खरीदने के लिए भेजती थीं। किसी की भावना को ठेस पहुँचाना उनके

स्वामीजी के साथ सारा बुल

स्वभाव के विपरीत था।''

प्रथम विश्व-युद्ध के समय भारत में वस्त्रों की भारी कमी थी, क्योंकि सारे मिल इंग्लैंड में थे। अँगरेज भारत से सुई-धागा ले जाते थे और अपने देश में कपड़ा बनाकर, ऊँची कीमत पर भारत में निर्यात करते थे।

एक दिन विभूति घोष माँ सारदा के भक्त, अपने साथी भक्त सुरेश्वर सेन से मिलने विष्णुपुर गए। सेन परिवार की एक युवा कन्या ने उनसे कहा – ''चाचा, मैं कमरे से बाहर नहीं आ सकती। अत: मुझे आपको यहीं से प्रणाम करना होगा। विभूति ने अपनी चादर लड़की के कमरे में फेंकी, अपने को चादर से ढँककर लड़की कमरे से बाहर आई। जब इस घटना का वर्णन विभूति ने माँ सारदा के पास किया, तो माँ रोने लगीं।

कुछ दिन बाद किसी ने अखबार पढ़कर एक हृदयविदारक घटना माँ को पढ़कर सुनाया – कुछ स्त्रियों ने आत्महत्या का प्रयास किया, क्योंकि उनके पास वस्त्र नहीं थे और वे कमरे से बाहर नहीं आ सकती थीं। इसे सुनकर माँ बहुत दुखी हो गईं। माँ बहुत जोरों से रोईं और बोलीं – ''स्त्रियाँ क्या करेंगी। यदि उनके पास तन ढँकने के लिए वस्त्र नहीं होंगे? अपनी मर्यादा की रक्षा करने के लिए उनके पास आत्महत्या के सिवाय और क्या रास्ता है?''

स्वामी निखिलानन्द ने उस समय माँ के देश-प्रेम की भावना का वर्णन किया : माँ सारदा अपने ढंग से एक देशभक्त थीं, देश के कल्याण के बारे में उनकी एक धारणा थी। प्रथम विश्व-युद्ध के समय लोगों ने अत्यन्त कष्ट भोगा, विशेषकर वस्त्रों के अभाव से स्त्रियाँ आत्महत्या करने के लिए बाध्य हो गईं। अधिकांश स्त्रियाँ बाहर नहीं जा पाती थीं और उनकी आत्महत्या की सूचनायें प्राय: अखबारों में आती थीं। इस प्रकार की हृदयस्पर्शी घटनाओं को सुनकर एक दिन माँ सारदा अपने को नहीं रोक सकीं। अत्यधिक रोते हुए उन्होंने कहा – ''अँग्रेज कब जाएँगे? हमारा देश कब छोड़ेंगे? पहले हमलोगों के पास हर घर में चरखा होता था। लोग धागा बना लेते थे और अपना कपड़ा बना लेते थे। पहनने वाले कपड़ों की कमी नहीं होती थी। अंग्रेजों ने सब नष्ट कर दिया। उन लोगों ने हमसे छल किया और बोले – 'तुम लोगों को एक रुपए में चार नग अँग्रेजी कपड़ा मिलेगा और एक नग अलग से मिलेगा।' हमारे सभी लोगों ने आराम के जीवन का रास्ता अपनाया और चरखा लुप्त हो गया। अब इन ठाठ-बाटवालों का क्या हुआ? उनके दुखों का कोई अन्त नहीं है। उन्होंने एक शिष्य से उन्हें चरखा देने को कहा।

एक दिन अपरान्ह में माँ ने एक भक्त से पूछा – ''बेटा वहाँ भीषण युद्ध हो रहा था। अचानक वह समाप्त क्यों हो गया?'' भक्त ने उत्तर दिया – ''माँ, अमेरिका के राष्ट्रपति बूडरो विलसन ने शान्ति सम्मेलन में १४ प्रस्ताव रखे, जिससे युद्ध-विराम-संधि हो गई। सभी लोगों ने इसे स्वीकार किया और इस प्रकार शान्ति स्थापित हुई।'' माँ ने पूछा वे शर्तें क्या थीं?

भक्त ने बताया – ''दूसरे के देश पर आक्रमण नहीं करना, आपस में एक-दूसरे का आदर करना, क्षति की पूर्ति करना, आदि–आदि।''

माँ सारदा ने प्रतिक्रिया व्यक्त की – ''ये प्रशंसनीय बातें हैं। लेकिन ये जो कहते हैं, उसे होठों से कहते हैं। अति उत्तम होगा, यदि ये शब्द उनके हृदय से निकलें।''

पशु-पक्षियों की माता

गीता के दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण अपने दैवी स्वरूपों का वर्णन करते हैं : ''हे अर्जुन ! मैं आत्मा हूँ, जो सभी प्राणियों के हृदय में विराजमान है। मैं सभी प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त हूँ।'' वे आगे कहते हैं, वृक्षों में वे अश्वत्थ हैं, घोड़ों में उच्चै:श्रवा, हाथियों मे ऐरावत, गायों में कामधेनु, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरूड़ आदि-आदि। ब्रह्माण्ड की समग्र सृष्टि, उसका पालन और विनाश शक्ति के अधिकार क्षेत्र में है, जो जगत-जननी है, वह सभी प्राणियों में चैतन्य और मातृरूप में विद्यमान है।

दुर्गासप्तशती में ब्रह्मा ने प्रार्थना की – ''हे जगदम्बे, इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन और संहार के पीछे आपकी ही शक्ति है। सभी धर्मशास्त्र कहते हैं कि जड़ वस्तुएँ और समस्त प्राणी जगन्माता से ही उत्पन्न हुए हैं, इसलिए वे सभी ईश्वर या जगदम्बा के अंश हैं।''

श्रीरामकृष्ण कुत्ते और बिल्लियों को पसंद करते थे। रामलाल बताते थे – ''मंदिर उद्यान में एक कुत्ता था, ठाकुर उसे कैप्टन कहकर बुलाते थे। केप्टन प्राय: माँ काली के मंदिर के सामनेवाले बरामदे में बैठता था। ठाकुर जब भी उसे बुलाते थे, वह कुत्ता आकर ठाकुर के चरणों में लोटता

था। फिर ठाकुर उसे पूरी और मिठाई खिलाते थे। ठाकुर एक बार बोले 'देखो यहाँ कितने कुत्ते हैं, लेकिन कैप्टन के सिवाय अन्य कोई माँ के सामने नहीं बैठता। मैं अन्य किसी कुत्ते को नहीं देखा, जो गंगा के पास वाली सीढ़ी में बैठता हो और गंगा-जल पीता हो। पूर्वजन्म में उसके कुछ अच्छे संस्कार थे, इसलिये वह यहाँ है। वह एक पुण्यात्मा है।''

निस्तारिणी घोष स्मरण करती थीं – ''दक्षिणेश्वर में एक बार एक बिल्ली ने अपने छोटे बच्चों सहित श्रीरामकृष्ण के कमरे में शरण ले लिया। बिल्ली कभी-कभी उनके बिस्तर में उनके पैरों के पास सो जाती और यदि वे नीचे उतरते और उस पर अपने हाथ फेरते, वह तत्काल उठ जाती और ऐसा प्रतीत होता था कि वह प्रणाम कर रही है। ठाकुर को यह जानकर बहुत कष्ट होता था कि मंदिर में बिल्ली और उसके बच्चों को ठीक से भोजन नहीं मिलता। इसके लिए वे क्या करें। एक दिन जब मैं ठाकुर से मिलने गई, उन्होंने मुझसे पूछा, क्या तुम मेरे लिए कुछ करोगी? मैं उनके सामने हाथ जोड़कर बोली, जो भी हो, मैं अवश्य करूँगी'। लेकिन उन्होंने पुन: पूछा और मैंने पुन: वही उत्तर दिया। फिर उन्होंने बिल्ली के बारे में बताया और उन्हें मुझे लेकर जाने को कहा – उन्होंने मुझसे कहा 'स्मरण' रखना ये लोग मेरी शरण में थे, अत: देखना इनकी देखभाल अच्छी तरह हो।'' निस्तारिणी ने ठाकुर के निर्देश का शब्दश: पालन किया।

माँ सारदा गायों, बिल्लियों और पक्षियों की देखभाल करती थीं। दुर्गापूजा में बकरे की बलि देना, अनुष्ठान का एक भाग था। लेकिन जब संन्यासीगण बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा कर रहे थे, माँ सारदा ने उन्हें बकरे की बलि देने से मना कर दिया। हिंसा करना संन्यासियों के लिए वर्जित है।

जब माँ उद्बोधन भवन में रहती थीं, तब वहाँ अच्छा दूध नहीं मिलता था। इसलिए साधुओं ने कहा कि वे लोग एक गाय कलकत्ता भेज देंगे। लेकिन माँ सारदा ने मना कर दिया। गायें बेलूड़ मठ में स्वतन्त्रतापूर्वक मठ के अहाते में गंगा किनारे घूमती हैं, लेकिन कलकत्ता में शहर के एक कमरे में बन्द हो जाएँगी और यह माँ के लिए असहनीय था।

जिस काम को करने से दूसरों को असुविधा हो, माँ सारदा अपने शिष्यों को ऐसा कार्य करने की अनुमति भी नहीं देती थीं। जयरामबाटी में शुद्ध दूध लेने के लिए, जब ब्रह्मचारी ज्ञान ने दो गुना कीमत दूध बेचनेवाले को दिया, जिससे वह दूध में पानी नहीं मिलाए, तो माँ ने दोबारा ऐसा करने से मना किया। उन्होंने कहा, ऐसा करने से दूध की कीमत बढ़ जायेगी और गरीब ग्रामवासी अपने बच्चों के लिए दूध नहीं खरीद सकेंगे।

गिरीश घोष जब जयरामबाटी आए, तो माँ सारदा प्रात: घर-घर जाकर दूध इकट्ठा करती थीं, जिससे वे गिरीश घोष और अन्य भक्तों के लिए सुबह की चाय बना सकें। एक बार एक शिष्य एक धनी भक्त को माँ के लिए एक गाय खरीदने के लिए एक पत्र लिखना चाह रहे थे। जब उसने इस पर माँ से सहमति माँगी, तो वे शिष्य पर रुष्ट हो गईं और ऐसा कुछ लिखने से मना किया। दूध की कमी के होते हुए भी माँ गाय खरीदने के लिए राजी नहीं थीं और अपने सहायकों का काम बढ़ाना नहीं चाहती थीं। उन्होंने अनिच्छापूर्वक अपनी सहमति प्रदान कीं, जब सुरेन्द्रनाथ गुप्त (बाद में स्वामी सत्संगानन्द) ने दो गायें दीं और उनके सहायक जगन्नाथ गायों की देखरेख करने के लिए उत्सुक थे। बाद में जगन्नाथ बहुत बीमार हो गए और उन्हें अस्थायी रूप से कटिहार ले जाना पड़ा। अपने जाने के पूर्व सुरेन्द्रनाथ की सहायता से उन्होंने गाय का एक कोठा बनवा दिया और गोविन्द नाम के एक लड़के को गायों की देखरेख के लिए नियुक्त किया।

गोविन्द दस वर्ष का एक सुशील और हँसमुख अनाथ लड़का था। माँ का उस पर बड़ा स्नेह था। कुछ समय बाद एक्जीमा उसके पूरे शरीर में फैल गया और उसे अत्यधिक कष्ट होने लगा। एक बार वह रात भर सो नहीं सका, रोते रहा। दूसरे दिन सुबह माँ सारदा ने नीम की पत्ती और हल्दी को कूटकर उसका लेप बनाया, उसे पूरे शरीर में किस प्रकार लगाना है, उसे समझाया। इस रक्त साफ करनेवाली जड़ी-बूटी के लेप से वह ठीक हो गया। **(क्रमश:)**

युवाओ, कभी निराश मत होना !

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक मेधावी छात्र था, जो अपनी कक्षा में अव्वल रहता था। लेकिन उसके क्रोधी और चिड़चिड़े स्वभाव के कारण उसके शिक्षक उससे नाराज थे। उसकी मित्र मंडली अच्छी थी, लेकिन वे केवल उसके अच्छे अकादमिक रिकॉर्ड के प्रशंसक थे, उसके चरित्र के नहीं। वह अपने माता-पिता का लाड़ला था। उसकी सभी माँगें तुरन्त पूरी कर दी जाती थीं। लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, उसे अहंकार होने लगा। उसकी माँगें भी बहुत बढ़ गईं। एक दिन उसने अपने पिता से कुछ माँग की। उन्होंने किसी कारणवश उसे पूरा करने से मना कर दिया। यह लड़के के लिए बहुत बड़ा आघात था और वह क्रोधित हो गया। वह अपने पिता से लड़ने लगा और उनके प्रति कठोर एवं असभ्य शब्दों का प्रयोग करने लगा। वह क्रोध के आवेश में ही विद्यालय चला गया। कक्षा में शिक्षक पढ़ा रहे थे, लेकिन वह लड़का पढ़ाई पर ध्यान नहीं दे रहा था। शिक्षक को लगा कि कुछ गड़बड़ है। जब शिक्षक ने उससे कुछ प्रश्न पूछे, तो वह उत्तर नहीं दे सका। शिक्षक ने लड़के को डाँटा, जिससे वह क्रोध से आग बबूला हो गया। लड़का अचानक उठा और कक्षा से बाहर आया। अगले दिन शिक्षक और उसके सहपाठी यह दु:खद समाचार सुनकर स्तब्ध रह गए कि लड़के ने आत्महत्या कर ली है।

ऐसी घटनाएँ आधुनिक युवाओं की दुर्दशा का संकेत देती हैं। युवा आज उत्तेजनशील हो गए हैं। सांसारिकता में व्यस्त रहने के कारण या अधिक लापरवाही के कारण, माता-पिता अपने बच्चों को इस प्रकार प्रशिक्षित करने में सक्षम नहीं हैं जिससे वे वासना, क्रोध और भय जैसी नकारात्मक भावनाओं को कैसे नियंत्रित कर सकें। बच्चे कठिन परिवेश में बड़े होते हैं और वे अपनी इच्छाओं और भावनाओं पर नियंत्रण रखना नहीं सीख पाते और न ही उन्हें इसकी आवश्यकता ही अनुभव होती।

यहाँ एक सत्य घटना है, जो हमें सन्देश देती है कि विपरीत परिस्थिति में हमें उत्तेजनशील होकर जल्दबाजी में कोई ऐसा निर्णय नहीं लेना चाहिए, जिससे हमारी जीवन-लीला ही समाप्त हो जाये।

विपरीत परिस्थिति हमारा भाग्य तय नहीं करती है। आईए, जानते हैं **शा कैरी रिचर्डसन** के जीवन को, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए वर्ल्ड एथलेटिक्स चैम्पियनशिप में पहला गोल्ड मेडल जीतकर इतिहास रच दिया।

शा कैरी रिचर्डसन अमेरिकी धावक (स्प्रिंट एथलेटिक्स) है। उसने १०० मीटर की स्प्रिंट १०.६५ में पूरी करके वर्ल्ड एथलेटिक्स चैम्पियनशिप (२०२३) में अपना पहला गोल्ड मेडल जीता है। इस सफलता को प्राप्त करने के लिए २३ वर्ष की शा कैरी रिचर्डसन को अत्यधिक संघर्ष से होकर गुजरना पड़ा।

लगभग दो वर्ष पहले कैरी की माँ की मृत्यु हुई। वे माँ की मृत्यु के आघात को सहन न कर पायीं और इस आघात से उबरने के लिए उन्होंने गांजा का सेवन करना प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए उन्हें खेल से एक महीने के लिए निलम्बित कर दिया गया। उच्च विद्यालय में भी उन्हें ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा था। उन्होंने आत्महत्या करने का प्रयास किया था, क्योंकि उनके साथ कोई दौड़ने के लिए तैयार नहीं था। वर्ष २०२१ में वे डोप टेस्ट में असफल हुईं और टोक्यो ओलंपिक से बाहर हुईं, इस प्रकार वे कई आलोचनाओं की शिकार हुईं। कैरी बहुत उदास हो चुकी थीं, परन्तु उनके परिवार (मौसी और नानी) के सदस्यों ने कठिन समय में कैरी का पूरा साथ दिया। कैरी ने विपरीत परिस्थितियों का दृढ़ता से सामना किया और सभी आलोचनाओं की परवाह न करते अपने आपको लक्ष्य की ओर केन्द्रित किया। कैरी सब कठिन परिस्थितियों

शा कैरी रिचर्डसन

से उबकर बाहर आई और अपने प्रशंसकों और परिवार के सदस्यों से क्षमा माँगी, क्योंकि उसने अपने बुरे आचरण के कारण उन्हें निराश किया था।

हमें स्वयं का अधिपति बनने की आकांक्षा रखनी चाहिए। हमें अपनी इन्द्रियों और मन पर पूर्ण नियंत्रण रखते हुए जीने का प्रयास करना चाहिए। सुप्रसिद्ध विचारक पी.डी.ऑस्पेंस्की ने सामान्य मानव व्यक्तित्व की तुलना एक ऐसे घर से की है जिसमें केवल नौकर होते हैं, मालिक कोई नहीं होता है। नौकर अपनी मनमर्जी से कार्य करते हैं। इसी प्रकार, हमारी इन्द्रियाँ, इच्छाएँ और भावनाएँ अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार व्यवहार करती हैं और हम, जो उनके स्वामी कहे जाते हैं, बिना किसी विरोध के शालीनता से उनके आदेश का पालन करते हैं। अर्थात् इन्द्रियों के दास बन जाते हैं।

अन्नू रानी धारयान

आलोचनाओं से घबराकर अपने लक्ष्य को न छोड़ें, क्योंकि लक्ष्य प्राप्त होने पर आलोचकों की नकारात्मक सोच आपके प्रति सकारात्मक हो जाती है।

आईए, जानते हैं अन्नू रानी की देश के प्रति खेल की भावना को, जिन्होंने एशियाई खेल २०२३ में जेवलिन थ्रो में भारत के लिए स्वर्ण पदक जीता।

अन्नू रानी धारयान का जन्म २८ अगस्त, १९९२ में मेरठ के बहादुरपुर गाँव में हुआ। उसके पिता एक किसान थे। अन्नू के पास एक भाला खरीदने के लिए भी पैसे नहीं थे। अन्नू की पहली भाला छड़ी वह थी, जिसे उसने स्वयं बाँस के एक लम्बे टुकड़े से तैयार किया था। इसके बाद उसने एक बाँस को ही भाले का आकार दिया और उससे अभ्यास करना आरम्भ किया।

अन्नू ने एक खाली खेत में बाँस फेंकने के लिए अभ्यास करना प्रारम्भ किया। उसने १८ साल की आयु में पहली बार भाला-फेंक खेल खेलना आरम्भ किया था। लड़कियों को खेल में भाग लेने के लिए उनके पिता की अस्वीकृति थी। परन्तु उनके भाई उपेन्द्र ने उनकी प्रतिभा की पहचान की, जिन्होंने एक बार क्रिकेट खेलते हुए अन्नू के शरीर के ऊपरी हिस्से की ताकत देखी थी। उसके भाई ने बाद में प्रशिक्षण के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की। जिला स्तर से खेलते-खेलते वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गई।

अन्नू ने २०१४ में राष्ट्रीय रिकॉर्ड तोड़कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। उसने ५९वीं राष्ट्रीय ओपन एथलेटिक्स चैंपियनशिप में महिलाओं की भाला फेंक स्पर्धा में स्वर्ण पदक जीता। मार्च, २०१९ में उसने पटियाला में नेशनल सीनियर एथलेटिक्स चैंपियनशिप में ६२.३४ मीटर की थ्रो के साथ अपना ही रिकॉर्ड पुन: तोड़ दिया। उसने २०२० में एथलेटिक्स में स्पोर्ट्सवुमन ऑफ द ईयर अवार्ड जीता। २०१९ में कतर में एशियाई एथलेटिक्स में रजत पदक जीता और विश्व एथलेटिक्स चैंपियनशिप के लिए क्वालीफाई किया और विश्व एथलेटिक्स चैंपियनशिप में भाग लेने वाली पहली भारतीय महिला भाला फेंक खिलाड़ी बन गई।

चीन के हांगझोउ शहर में एशियन गेम्स-२०२३ में भारत की शानदार एथलीट अन्नू रानी ने जैवलिन थ्रो में भारत के लिए स्वर्ण पदक जीता। अन्नू रानी ने एशियाई खेल-२०२३ में जेवलिन थ्रो में भारत को १५वाँ स्वर्ण पदक दिलाया। उन्होंने चौथे प्रयास में ६२.९२ मीटर की दूरी तक भाला फेंका।

भावनाएँ ही हमारी सोच को सशक्त बनाती हैं। भावनात्मक समर्थन के बिना सोच गतिशील नहीं हो सकती। भावनाएँ गाड़ी के लिए ईंधन की तरह हैं। गाड़ी बहुत अच्छी हो सकती है और चालक बहुत अच्छा हो सकता है, लेकिन ईंधन के बिना वह चल नहीं सकती। जीवन की इस गाड़ी को भी सकारात्मक भावनाएँ ही गतिशील करती हैं। इसीलिए कहा गया है 'Play the game and play it well' (खेल, खेल की भावना से खेलो)। यदि ईंधन शुद्ध न हो, तो गाड़ी जल्दी खराब हो जाएगी। इसी प्रकार, हमारी भावनाएँ शुद्ध होनी चाहिए अर्थात् नकारात्मकता से मुक्त। हमें अपने जीवन में सकारात्मक भावनाओं को विकसित करना होगा।

उपर्युक्त वर्णित शा कैरी रिचर्डसन और अन्नू रानी के द्वारा अर्जित प्रेरणादायी सफलता उनकी प्रतिभा को अभिव्यक्त करती है, जो यह सन्देश प्रेषित करती है कि हमें जीवन की कठिन स्थितियों में हार नहीं माननी चाहिए। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/६)

स्वामी आत्मानन्द

दूसरी साधना : भगवान के निमित्त कर्म करना

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।१०।।

अभ्यासे अपि असमर्थ: असि (अभ्यास में भी तू असमर्थ है तो) मत्कर्मपरम: भव (मेरे कर्मपरायण हो जा) मदर्थम् कर्माणि कुर्वन् (मेरे निमित्त कर्म करता हुआ) अपि सिद्धिम् अवाप्स्यसि (भी मेरी प्राप्ति कर सकेगा)।

''अभ्यास में भी तू असमर्थ है, तो मेरे कर्मपरायण हो जा, इस प्रकार मेरे निमित्त कर्म करता हुआ भी मेरी प्राप्ति कर सकेगा।''

भगवान ने अर्जुन को यह तो समझा दिया कि जो अपने चित्त को उनमें लगा देता है, उस भक्त के लिए वे संसार-सागर को पार करनेवाली नौका बन जाते हैं। अब प्रश्न आता है कि वह भक्त अपने चित्त को किस प्रकार भगवान में आविष्ट करे? उसके लिए भगवान क्रम से हमारे समक्ष कुछ साधनाएँ रखते हैं –

मनुष्यों के तीन प्रकार बताए गए हैं –

१. वह जो अपने मन और बुद्धि को भगवान में लगा लेता है। ऐसे भक्तों के लिए भगवान का आश्वासन है कि अन्त में वे भगवान को ही पा लेते हैं।

२. वृत्तियाँ अनेक हैं, पर वृत्तियों का उद्देश्य एक है – भगवान के चरण। सभी लोग अपने मन और बुद्धि को भगवान में नहीं लगा सकते। सम्भव नहीं होता कि हम एकदम से अपने मन में उठनेवाले सभी विचारों को भगवान

में लगा दें। इच्छा अवश्य है कि भगवान के ही चरणों में अपने समस्त विचारों के स्पन्दन को केन्द्रित कर दें। उनका चित्त थोड़ी देर भगवान के चरणों में स्थिर रहकर फिर संसार में लौट जाता है। अनायास ही अपने चित्त को भगवान में लगा देना जिनसे नहीं सधता, उनके लिए दूसरी श्रेणी भगवान ने अभ्यास के द्वारा साधना करने की बताई है।

३. तीसरी श्रेणी भगवान वह बताते हैं, जिसमें व्यक्ति अभ्यास करने में भी असमर्थ है। मन और बुद्धि पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। वह कितना भी प्रयत्न करता है, पर भगवान के चरणों में अपने चित्त को लगा ही नहीं पाता। उसके लिए भगवान का आदेश है कि वह अपने सब कर्मों को भगवान के परायण कर दे। उसके सब कर्म भगवान के ही प्रति होते हों, उन्हीं के उद्देश्य से किए गए हों। कार्य संसार का हो और सेवा भगवान की। भगवान कहते हैं, 'इस प्रकार मेरे लिए कर्म करता हुआ भी तू परमसिद्धि को प्राप्त कर लेगा। कर्म अनेक हैं, पर कर्मों का उद्देश्य एक है – भगवान की प्रीति।

हमारा मानसिक गठन भिन्न-भिन्न होता है। हमारी सम्भावनाएँ और शक्तियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। वास्तव में हम जो कर्म करते हैं, उसमें भाव ही तो प्रधान है। कर्म के बाहरी रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। शरीर को चाकू से काटने का कर्म तो डॉक्टर और डाकू का एक समान है, पर दोनों के कर्मों के भावों में, उद्देश्य में बहुत अन्तर आ जाता है। भाव के कारण क्रिया में बहुत अन्तर आ जाता है। इसीलिए भगवान कहते हैं, **मत्कर्मपरमो भव** – अर्जुन! जब तेरी सभी क्रियाएँ मेरे लिए होने लगेंगी, मेरे साथ उनका संयोग होगा, तब उन क्रियाओं में इतनी शक्ति आ जाएगी कि वे तेरे भीतर के परमेश्वर को जगाकर रख देंगी। उदाहरणार्थ चुटकी भर बारुद राख के ही समान रहती है, जब तक उसका अग्नि के साथ संयोग नहीं हो जाता। भगवान के परायण कर्म करने का एक लाभ यह है कि नारायण-भाव से नर की सेवा करने पर हमें अपने प्रति किसी की कृतज्ञता की आशा नहीं रहती। यह हमारी साधना का पथ प्रशस्त कर देता है। इसी को कर्म को यज्ञ बना लेना कहते हैं। प्रत्येक कर्म भगवान की पूजा बन सकता है। नि:स्वार्थ भाव से की गई सेवा भगवान की पूजा बन जाती है, यज्ञ

बन जाती है। हमारे ऐसे कार्य हमें ऊपर उठा देते हैं। हमारे भीतर की शक्तियों को ऊपर उठाकर हमें प्रबुद्ध कर देते हैं। क्रिया करते हुए उसमें नारायण का भाव रहने से हमें अहंकार नहीं सताता। हमारी ऐसी सेवा हो, जिससे समाज को लाभ भी पहुँचे और हमारी साधना भी सधे। कर्मों से भगवान का तात्पर्य शुभकर्म से, कर्तव्यकर्म से है। किसी के नाश की कामना से किए गए कर्म भगवान को समर्पित नहीं किए जा सकते। ऐसे कर्म विकर्म की श्रेणी में आते हैं। उनके प्रति तो उन्हीं कर्मों का समर्पण हो सकता है, जो सबके कल्याण के लिए किए गए हों। भगवान कहते हैं, 'अर्जुन! मेरे निमित्त कर्म करनेवाला बन। मेरे परायण होकर तू कर्म कर। जीवन के जितने भी कर्म हैं, उन सबका संयोग मेरे साथ करा दे। अपने सभी कर्मों को मेरे साथ युक्त कर दे।' मनुष्य जो भी कर्म करे, वह सब भगवत्प्रीत्यर्थ ही करे। किसान खेती करता है, अन्न उपजाता है, उस अन्न से जिन प्राणियों का पेट भरता है, वह भगवान की ही सेवा है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कार्यों द्वारा भगवान की सेवा करके मनुष्य धन्य होता है। भगवान कहते हैं, मेरे निमित्त कर्म करना भी यदि सम्भव न हो, तो एक अन्य उपाय भी है। कभी-कभी मनुष्य के लिए यह कठिन हो जाता है कि अपने सभी स्वार्थों का त्याग करके वह भगवान के लिए ही कर्म करने में नियुक्त हो जाए।

तीसरी साधना : कर्मों के फल का त्याग

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।११।।

अथ मद्योगम् आश्रितः (यदि मुझ पर आश्रित होकर) एतत कर्तुम् अपि अशक्तः असि (कर्म करने में भी असमर्थ है) ततः यतात्मवान् (तो अपने मन-बुद्धि पर विजय प्राप्त कर) सर्वकर्मफलत्यागम् कुरु (सब कर्मों के फलों को मुझे अर्पित कर दे)।

''यदि मुझ पर आश्रित होकर कर्म करने में भी असमर्थ है, तो अपने मन-बुद्धि पर विजय प्राप्त कर सब कर्मों के फलों को मुझे अर्पित कर दे।''

भगवान कहते हैं, 'मेरे आश्रित होकर कर्म करने में यदि तू समर्थ न हो, मेरा चिन्तन तू हर कर्म में न कर सके, तो अपने सब कर्मों के फल का त्याग कर मुझे अर्पण कर दे। अपने मन, अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करके नियन्त्रण में ला और इस प्रकार संयमी बन। कहीं अपने दुष्कर्मों के फल भी भगवान को अर्पित न करने लगें, इसीलिए संयमी बनने को कहा। संयम रहने पर दुष्कर्म करने से बचा जा सकेगा।'

भर्तृहरि ने मनुष्यों के चार प्रकार गिनाये हैं –

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।
(नीतिशतक)

१. अपने स्वार्थ का त्याग करके दूसरों के लिए काम करनेवाले, ये उच्च कोटि के लोग सत्पुरुष कहे जाते हैं।

२. दूसरी श्रेणी में वे सामान्य पुरुष हैं, जो दूसरों का हित तो करते हैं, परन्तु तभी तक करते हैं, जब तक उनके अपने स्वार्थ को चोट नहीं पहुँचती।

३. तीसरी कोटि के लोग मानव-राक्षस कहलाते हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के हित को काट देते हैं।

४. चौथी कोटि में वे लोग आते हैं, जो अकारण ही दूसरों के स्वार्थ का हनन करते रहते हैं।

जो भगवान को चाहते हैं और अपने चित्त को भगवान के चरणों में समर्पित करने की जिनकी इच्छा तो है, पर वैसा करने में जो असमर्थ हैं, उन्हीं के लिए गीता के बारहवें अध्याय में भगवान ने इन चार सोपानों की साधनायें बताई हैं। मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् और सर्वकर्मफलत्याग, इन दोनों में एक सूक्ष्म अन्तर है। तृतीय श्रेणी के साधक ने कर्म का फल तो भगवान को दे ही दिया। यहाँ फल भी ईश्वराधीन है और अहं भी ईश्वराधीन है। चौथी श्रेणी की साधना में फल तो ईश्वराधीन है, परन्तु अहं यहाँ स्वाधीन है। इस श्रेणी का अहं अनुभव करता है – मैं कर्म करनेवाला हूँ। मैं फलों को समर्पित करता हूँ। निःस्वार्थ भाव से कर्म करते रहने और संयमी रहने से कर्मों के फल का त्याग सधता है।

कर्मफलत्याग से संयम का साधन : गिरीशचन्द्र घोष का उदाहरण

बंगाल के श्री गिरीशचन्द्र घोष प्रख्यात नाटककार थे और उन्होंने वहाँ थियेटर प्रथा चलाई थी। उन्हीं के नाटकों में सर्वप्रथम स्त्री-पात्र स्त्रियों के द्वारा ही खेले जाने का चलन चला। वे महिलाएँ वेश्या होती थीं। कोई ऐसा दुर्गुण नहीं था, जो गिरीशचन्द्र में न रहा हो। एक दिन गिरीश के थियेटर में श्रीरामकृष्ण हरिश्चन्द्र नाटक देखने आकर वहीं समाधिस्थ

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (३१)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

श्रीरामकृष्ण उवाच

औषधं ते शुभायेति तं तु यो नात्तुमिच्छति।

चारुं वावद्यते वाचं यो वैद्यः स तु मध्यमः।।३०।।

– जो वैद्य रोगी दवा नहीं खा रहा है देखकर मधुर वाणी कहकर समझाता है – 'अरे, औषधि खाने से तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा, इत्यादि कहता है, वह मध्यम वैद्य है।

ग्रासयति बलात् तं वै यो न खादति भेषजम्।

तस्योरस्यपि जानुभ्यामुपविष्टः स उत्तमः।।३१।।

– जो वैद्य रोगी औषधि किसी प्रकार भी नहीं खा रहा है, यह देखकर छाती पर घुटना रखकर बलपूर्वक औषधि खिलता है, वह उत्तम वैद्य है।

तदोपदिश्य शिष्यं तु चिरं गच्छति यो गुरुः।

कदा तं नानुसन्धेत्तु ह्यधमोऽभिधीयते।।३२।।

– उसी प्रकार जो गुरु या आचार्य शिष्य को उपदेश देकर चले जाते हैं, शिष्य का कुछ समाचार नहीं लेते, वे गुरु या आचार्य अधम कहे जाते हैं।

उपदिशति यः शिष्यं तद्धिताय पुनः पुनः।

तस्योपलब्धये प्रेम्णा स च वै मध्यमो गुरुः।।३३।।

– जो शिष्य के मंगल हेतु बार-बार प्रेम से समझाते रहते हैं, जिससे उनका शिष्य धारणा कर सके, वे ही मध्यम गुरु हैं।

ततो यो वा अशुश्रूषं योजयति बलेन च।

तं नानुवर्तिनं शास्ति स आचार्योत्तमो मतः।।३४।।

।।ओमिति श्रीरामकृष्णगीतासु गुरुर्नाम षष्ठोऽध्यायः।।

– शिष्य ठीक से उपदेशों का पालन नहीं कर रहा है, ऐसा देखकर जो गुरु या आचार्य बलपूर्वक पालन कराते हैं, वे ही उत्तम आचार्य हैं। ऐसा ज्ञानियों का मत है।

।।ॐ श्रीरामकृष्णगीता का गुरुनामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।।

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

हो गए। वहीं से ठाकुर का और गिरीश का साथ हो गया। स्वामी विवेकानन्द एक व्यभिचारी के साथ ठाकुर का रहना पसन्द नहीं करते थे। इसलिए उसका बहुत विरोध करते थे। श्रीरामकृष्ण ने गिरीश से सुधरने को कहा, तो वही श्रेणियाँ गिनाईं। मन को भगवान में लगाने को कहा, तो गिरीश ने बताया कि होश में रहे, तब तो भगवान की बातें सोचे! अभ्यास करना भी उसके बूते के बाहर था। अपने निमित्त कर्म करने को कहा, तो गिरीश बोला कि थियेटर छोड़ दूँ, तो खाऊँगा क्या? अन्त में ठाकुर ने यही कहा कि जो भी कर्म करे, उसका फल तुम जगदम्बा को सौंप सकता है। इस पर गिरीश बोला कि किसी कर्म को करते हुए जब-जब आपकी बात का ख्याल आ जाएगा, तब-तब उस कर्म का फल जगदम्बा को सौंप दूँगा। अन्त में हुआ यही कि शराब पीते हुए गिरीश को ठाकुर की बात का स्मरण हो आता था और उस दुष्कर्म को जगदम्बा के चरणों में समर्पित करने में अपने को असमर्थ पाता रहा और इस प्रकार पूर्णतया सुधरकर गिरीश आध्यात्मिक पुरुष बन गए। कर्म के फल को छोड़ना मानो स्वार्थ का त्याग करना है और स्वार्थ-त्याग से ही फलत्याग सधता है। वही भगवान को समर्पित करते हुए कर्म करना है।

ग्यारहवें श्लोक तक तो भगवान फलत्याग को चतुर्थ श्रेणी में गिनाते रहे और बारहवें श्लोक में कर्मफलत्याग को सबसे ऊपर पहुँचा दिया। भगवान इसमें कहते हैं, 'अभ्यास से बढ़कर है ध्यान और ध्यान से बढ़कर है कर्मफलत्याग और कर्मफलत्याग के बाद ही मनुष्य को शान्ति मिलती है।'

यह एक कूटश्लोक है। कथा आती है कि व्यासजी ने जब गणेशजी से महाभारत लिखवाना आरम्भ किया, तो गणेशजी ने शर्त रख दी कि उन्हें कहीं बीच में रुकना पड़ गया, तो वे लिखना बन्द कर देंगे। तब व्यासजी ने भी उनसे प्रतिज्ञा कराई कि जो कुछ लिखेंगे, उसे समझकर ही लिखेंगे। इसलिये बीच-बीच में व्यासजी कुछ ऐसे पेचीदे श्लोक बोले देते थे, जिन्हें समझने में गणेशजी को भी कठिनाइयाँ हों। जब तक गणेशजी उस श्लोक का अर्थ समझें, तब तक व्यासजी को अगले श्लोक की रचना के लिए समय मिल जाता। यही श्लोक कहलाए कूट श्लोक। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द जयन्ती विशेष

विवेकानन्द और युवा आन्दोलन

नवनीहरण मुखोपाध्याय

संस्थापक, अखिल भारतीय युवा महामंडल

अन्यान्य प्रकार के आन्दोलनों से यदि हमारी अन्तर्क्षुधा शान्त हो गई होती, तो युवा आन्दोलन का कभी जन्म ही नहीं हुआ होता। सच्चा युवा आन्दोलन केवल व्यक्ति को ही नहीं, समाज को, पूरी मानव सभ्यता को जरा-वार्द्धक्य के पंजों से मुक्ति दिलाना चाहता है तथा मानव-जाति की तरुणाई को अमरता प्रदान कर उसे अक्षुण्ण बनाये रखना चाहता है। तभी तो युगों-युगों से युवक प्राणपन से हर प्रकार के अन्याय, अधर्म और कायरता के विरुद्ध, क्लैव्यता और अज्ञानता के विरुद्ध, अधर्म और कायरता के विरुद्ध, सभी प्रकार के बन्धनों के विरुद्ध संग्राम करते आ रहे हैं। बहुत-से लोग ऐसा मानते हैं कि जर्मनी के कार्ल फीसर ने १८९७ ई. में इस आन्दोलन को जन्म दिया, लेकिन यह बात सत्य नहीं है। मानव सभ्यता जब भी जरा-वार्द्धक्य की व्याधि से ग्रस्त हो जाएगी, उसी समय युवा आन्दोलन की सृष्टि हो जाएगी। प्राचीन युग में हमारे पूर्वज रामराज्य का स्वप्न देखा करते थे। ग्रीस के लोग एक आदर्श प्रजातन्त्र को स्थापित करने का स्वप्न देखते थे। मानव सभ्यता एवं संस्कृति के प्रारम्भ से ही मनुष्य के मन में यह प्रश्न उठता रहा है कि उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? वह क्यों जीवित है? उसके जीवन-धारण की सार्थकता किसमें है? इस प्रश्न का समुचित उत्तर जिस व्यक्ति को नहीं मिल पाता, वह अपने जीवन में आगे बढ़ने की शक्ति भी खो देता है, उसे अपना जीवन निरर्थक या निष्फल प्रतीत होने लगता है और वह अपनी आत्मशक्ति को अभिव्यक्त करने में सफल नहीं हो पाता है। विश्व के सारे मनीषियों तथा चिन्तनशील विद्वानों ने युवकों का जयगान किया है। बर्लिन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पौलसन अपनी पुस्तक दर्शन-भूमिका में कहते हैं – 'सम्पूर्ण विश्व में धरती के वक्ष पर जितनी बार भी क्रान्तियाँ हुई हैं, उतनी ही बार क्रान्तियों के अग्रदूत के रूप में 'महायौवन संघ' आविर्भूत हुआ है।' विख्यात मानव-विज्ञानी डॉ. भूपेन्द्रनाथ दत्त कहते हैं – बालकों एवं युवकों का काम ही स्वप्न देखना है और जो लोग बाल्यकाल के स्वप्नों को मूर्त रूप देने की प्रचेष्टा में अपना सारा जीवन न्यौछावर कर देते हैं, आगे चलकर वैसे ही लोगों को इतिहास समाज-सुधारक या क्रान्तिकारी कहता है और जो व्यक्ति अपने सपनों को साकार करने में सफल हो जाते हैं, उन्हें 'युग प्रवर्त्तक' या 'युगावतार' की संज्ञा देकर उनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करता है।' प्रख्यात मनीषी विनय सरकार लिखते हैं, **'युगों-युगों से विश्व के समस्त देशों की उन्नति की चाबियाँ उस देश के १६ वर्ष से २० वर्ष के एवं २६ वर्ष से ३० वर्ष के युवक-युवतियों की मुट्ठियों में ही झनझनाया करती हैं।'** जापान के डॉ. मतोदा कहते हैं – 'युवाओं का जीवनव्रत वर्तमान काल में तथा लक्ष्य भविष्य में टिका होता है।' आधुनिक युग में हमलोग ऐसे ही एक युवा नेता श्रीरामकृष्ण को एक अभूतपूर्व युवा संगठन खड़ा करते देखते हैं। वे दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में अपने कमरे की छत पर खड़े होकर युवाओं को ही अपना निकटस्थ सहयोगी मानते हुए आह्वान करते हैं – 'तुम सब कौन, कहाँ हो रे, आओ ! इस तथ्य को कोई भी वैज्ञानिक बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता कि उनके इस आह्वान के प्रत्युत्तर में प्राणवन्त ऊर्जा से परिपूर्ण कुछ युवा (नरेन्द्र, काली आदि) एकत्र हो जाते हैं एवं उन्हीं के निर्देशन में युवाओं का वह संगठन धार्मिक कट्टरता तथा अधर्म के विरुद्ध आन्दोलन चलाकर एक अनूठे 'रामकृष्ण साम्राज्य' की स्थापना कर देता है।' महामण्डल भी अपने नेता स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व में एक अखिल भारतीय युवा संगठन का विस्तार करने में जुटा हुआ है। यह आन्दोलन कुछ पाने का, किसी अधिकार-प्राप्ति का आन्दोलन नहीं है। यह स्वयं मनुष्य बनने का, चरित्र-गठन का आन्दोलन है।

आज यह बात समझ में आ रही है कि किसी भी दिशाहीन एवं बिखरे हुए छिटपुट आन्दोलनों से देश की समस्याओं का समाधान कभी नहीं होनेवाला है। आवश्यकता है वैश्विक और सार्वभौमिक कल्याण की नींव पर आन्दोलन खड़ा करने की, जिसके उपादान हमें रामकृष्ण-विवेकानन्द विचारधारा में सहज ही सम्पूर्णता में मिल जायेंगे। तभी स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, भारत माता हजारों युवकों का बलिदान चाहती है। जो साहसी, विश्वासी, चरित्रवान, नि:स्वार्थी तथा बुद्धिमान होते हैं, केवल वे ही इतिहास की रचना करते हैं। चरित्र-निर्माण एवं मनुष्यत्व का प्रस्फुटन ही सार्वभौमिक कल्याण की कुंजी है। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३५)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

सेवक – इस समय ध्यान कर रहे हैं?

महाराज – क्या ध्यान करूँगा? मैंने माँ को देखा है, महाराज को देखा है, लाटू महाराज, महापुरुष महाराज, शरत महाराज, हरि महाराज, इन सबको देखा है। उनलोगों की बातों का चिन्तन करता हूँ। दूसरा क्या ध्यान करूँगा? इसी का नाम तो है – रामकृष्ण चिन्तन।

सेवक – आप क्या रामकृष्ण लोक में हैं?

महाराज – हाँ, इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहाँ हूँ?

सेवक – श्रीरामकृष्ण को छोड़कर आपका अन्य कोई चिन्तन होता है?

महाराज – नहीं, इनके अतिरिक्त अन्य क्या चिन्तन करूँगा?

सेवक – देह-त्याग करने के लिये इतने व्यग्र क्यों हैं?

महाराज – यह देखो न, अचानक खुजली-रोग हो गया, अब यह मन रामकृष्ण लोक से यहाँ चला आया। इससे बड़ा कष्ट होता है। फिर देखता हूँ कि अनायास ही कष्ट पा रहा हूँ। कोई प्रयोजन नहीं है।

सेवक – आप शरीर को पृथक् देखते हैं?

महाराज – नहीं, ठीक-ठीक नहीं देखता, फिर भी समझता हूँ। मैंने पहले ही बताया है, मेरी धारणा आदि ठीक है, किन्तु शरीर की स्थिति से ऊपर नहीं उठ पाता हूँ।

सेवक – आप तो रामकृष्ण लोक के चिन्तन में हैं। तब क्या हम लोगों की बातें स्मरण आती हैं?

महाराज – हाँ, किन्तु एक साथ नहीं। तुम दिन भर साथ-साथ हो। मन में खूब स्मरण आता है।

२८-०८-१९६६

रोग का कष्ट, सभी बातों में परनिर्भरता, असहाय अवस्था में निवास। एक दिन एक विपरीत परिवेश में ही महाराज को चुपचाप देखकर सेवक बोला, ''महाराज, आज तक आपको इतने वर्षों से इतने निकट से देखता हूँ – ''लगभग चौबीसों घंटे, किन्तु कभी भी आपको क्रोधित होते नहीं देखा।''

महाराज – क्या करूँ, बताओ? गुरु ने जो नाम दिया है, उससे कैसे क्रोध करूँगा?

२९-०८-१९६६

सेवक – अच्छा, कोई-कोई माँ के पास जाते हुए काँपते थे (जैसे स्वामी ब्रह्मानन्दजी) और कोई-कोई अपनी माँ समझते थे (जैसे बरदा महाराज), इनमें उच्चतर कौन है?

महाराज – महाराज की बात अलग है।

सेवक – आप क्या उन्हें अपनी माँ समझते थे?

महाराज – पहले थोड़ा संकोच था, कुछ जगन्माता का भाव था। बाद में माँ का पत्र मिला – ''माँ के रूप में बोध रहने से किसी साधन-भजन की आवश्यकता नहीं।'' इसके बाद से माँ के रूप में बोध होने लगा।

सेवक – तब क्या जगन्माता का बोध रहता था?

महाराज – हाँ, वह भी रहता था, माँ का बोध भी रहता है।

(रात में) भवनाथ कहाँ गया? क्या मैंने स्वप्न देखा?

(कुछ देर बाद ही) मैं कहाँ सोया हूँ, ठाकुर के मन्दिर में? वही जो बरामदा दिख रहा है।

सेवक – महाराज, क्या आप स्वप्न देख रहे हैं?

महाराज – वैसा ही हो सकता है। देखो, १९०९ से वचनामृत पढ़ रहा हूँ, अभी भी ठीक से समझ नहीं सकता, धारणा नहीं होती, बस पढ़ता जाता हूँ। माँ की बातों में जीवन की सभी समस्याओं का समाधान पाओगे। हमारे लिए माँ की बातें ही सर्वोत्तम मार्गदर्शक हैं।

२९-०८-१९६६

सेवक – महाराज, आज कोई टॉनिक नहीं दीजिएगा? आध्यात्मिक टॉनिक नहीं दीजिएगा?

महाराज – मेरे पास ही नहीं है।

सेवक – आप जो सोचते हैं, उसे ही कह देने से हमारा टॉनिक का काम होगा।

महाराज – मैं अभी बात नहीं कर सकूँगा।

सेवक – माँ ने कहा था न ! इतनी बात कहने से ही तो दवा जैसा कुछ दे सकते हैं। यह तो वैसा ही हुआ।

२-०९-१९६६

महाराज – 'मैं ढाका से आया। कालीकृष्ण महाराज ने कैसा आदर सत्कार किया ! खाने को दिए। हाथ धोने की इच्छा होने पर उठने नहीं दिए और बोले – 'वहीं धो लीजिए।'

विशुद्धानन्द महाराज ने मुझसे कहा – 'माँ ने एक हाथ क्यों रखा है, दोनों ही ले सकती थीं। माँ की गोद में शिशु होकर रहने में अच्छा होता।'' इसीलिए उनका ही आशीर्वाद है। इस समय इस हाथ से खा सकता हूँ। माधवानन्द महाराज संघाध्यक्ष होने के अगले दिन ही सारगाछी गए। उनके सिर पर एक बड़े छाते की छाया में उन्हें ले जाया गया, वर्षा हो रही थी। मेरे पास बैठकर उन्होंने कितनी बातें कीं। देखता हूँ, इस बार प्रभु महाराज क्या करते हैं और कहते हैं।

सेवक – गुरुदास महाराज की बात याद नहीं आती?

महाराज – खूब, बालोंगंज में एक वर्ष एक साथ था।

सेवक – क्या-क्या बातें होती थीं, बताइए न?

महाराज – कुछ याद नहीं है।

सेवक – बातचीत तो निश्चय ही बांग्ला में होती नहीं थी।

महाराज – नहीं, अंग्रेजी में।

सेवक – क्या वे कुछ भी बांग्ला नहीं समझते थे? जैसे प्रणाम-नमस्कार आदि।

महाराज – कुछ-कुछ।

सेवक – उस समय शान्तानन्द महाराज भी वहीं थे?

महाराज – हाँ, वे कनखल (हरिद्वार) में रहते थे। बीच-बीच में आते थे।

सेवक – आप लोग आपस में क्या बातें करते थे?

महाराज – ठाकुर की बातों को लेकर चर्चा होती थी।

सेवक – तब वहाँ स्वामी अनुभवानन्द महन्त थे। वे भी माँ के शिष्य थे। आपको मोक्षदाबाबू की बातें याद नहीं आतीं।

महाराज – बहुत, प्राय: याद आती हैं।

सेवक – स्वामी सत्संगानन्द की बातें?

महाराज – स्कूल में एक साथ पढ़ता था। उनकी बातें प्राय: याद आती हैं। वे सब कैसे हैं?

सेवक – लगता है, आपका शरीर भी अब और अधिक दिन नहीं रहेगा।

महाराज – अरे, फूल-चन्दन कहाँ है, लाओ तुम्हारे मुख पर रखूँ।

४.०९.१९६६

महाराज – मनुष्य भगवान को पाने के लिए साधु बनता है, जगत के उद्धार के लिए नहीं। कार्यों से बीच-बीच में पृथक् नहीं हो पाने पर महन्त को भी आसक्ति आ सकती है। इसीलिए विशुद्धानन्द महाराज ने अनुकूल महाराज से कहा था, 'एक मास सब कार्य छोड़कर भाग आओ, जयरामवाटी में पड़े रहो। सब काम ठीक से चलेगा।''

सेवक – जैसा आपने स्वानुभवानन्द को कहा – रामकृष्ण सत्य हैं, रामकृष्ण मिशन मिथ्या है, रामकृष्ण सत्य हैं, रामकृष्ण संघ मिथ्या है।

महाराज – निश्चय ही ! किन्तु क्या करोगे। कर्मों का उत्तरदायित्व, इतना बड़ा दायित्व। हरि हरि बोलो, जय रामकृष्ण बोलो ! **(क्रमशः)**

मानव जाति की सेवा करना विशेषाधिकार है, क्योंकि यह ईश्वर की उपासना है। ईश्वर यहीं है, इन सब मानवीय आत्माओं में है। वह मनुष्य की आत्मा है।

– स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द जयन्ती विशेष

अप्रतिम विवेकानन्द

चम्पा भट्टाचार्य, भिलाई

प्राचीन काल से भारत की आध्यात्मिकता सागर की लहरों की तरह आकाश को स्पर्श कर रही है। आर्यावर्त की पुण्य भूमि महान ऋषि-मुनियों, अवतारों के चरण-स्पर्श से धन्य हुई है। जिस प्रकार सूर्य के आगे बादल आ जाने पर सूर्य का प्रकाश ढँक जाता है, वैसे ही जब-जब विदेशी आक्रमण कुसंस्कार, अन्धविश्वास रूपी आघातों से भारत मूर्छित-सा हो गया, तब-तब महान भारतीय विभूतियों द्वारा बारम्बार भारत को जागृत किया गया।

वर्तमान काल संक्रमण-काल है। विज्ञान की उन्नति से हम सब भौतिक सुख में लिप्त हैं। साथ ही आतंकवाद, असहिष्णुता, भोग-वासना से मानव जीवन ग्रसित हो रहा है। जन-जीवन नकारात्मक मानसिकता से पीड़ित है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने घोषणा की –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

इस श्लोक के भावानुरूप श्रीरामकृष्ण युगपुरुष युगावतार के रूप में आए। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने विश्वमानव को परम सत्य 'मोक्ष' प्राप्त करने और मानव में निहित 'देवत्व' का विकास ही जीवन का उद्देश्य है, यह सन्देश दिया। इस सन्देश के प्रचारक बने उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द।

ब्रह्मर्षि स्वामी विवेकानन्द ने परिव्राजक-काल में सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। राजा-रंक, धनी-गरीब, मूर्ख-ज्ञानी सभी से मिले। उन लोगों के विचारों और समस्याओं से अवगत हुये। इन निरीह भारतवासियों की दुर्दशा को देखकर स्वामी विवेकानन्द का हृदय तड़प जाता था। स्वामी विवेकानन्द शारीरिक, मानसिक, आर्थिक रूप से दुर्बल लोगों की परिस्थितियों को सुधारने के लिए आजीवन अथक प्रयास करते रहे।

कहते हैं, 'हरि अनन्त, हरिकथा अनन्ता', वैसे ही विवेकानन्द भी अनन्त है और उनकी कथा भी अनन्त है। फिर भी संक्षेप में विवेकानन्द को अप्रतिम विवेकानन्द क्यों कहा जाए, जानते हैं –

१. पगड़ी – आदि काल से भारत के कई ज्ञानी ऋषि, मुनि आदि के बारे में जानकारी मिलती है, लेकिन पगड़ीधारी चिर यौवन के प्रतीक संन्यासी के विषय में ज्ञात नहीं होता। यह वीर संन्यासी विवेकानन्द का तेजस्वी चेहरा पगड़ी से अत्यधिक आकर्षित प्रतीत होता था। उनका आत्मविश्वासी व्यक्तित्व दो विशाल उज्ज्वल नेत्र भी बड़े प्रभावकारी हैं।

२. गुरु दक्षिणा – भारतीय इतिहास में विशिष्ट गुरु और विशिष्ट शिष्यों के विषय में सभी जानते हैं, लेकिन जैसी गुरु-दक्षिणा स्वामी विवेकानन्द ने 'रामकृष्ण संघ' की स्थापना करके गुरु को प्रदान की, वैसी कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। गुरु की वाणी और विचार को प्रचारित और प्रसारित करने के लिए जिस संघ की नींव विवेकानन्द ने रखी थी, वह अब विशाल वट वृक्ष की तरह चारों दिशाओं में फैलकर समाज और देश के विकास में संलग्न है। विगत १२५वर्षों से मानव-सेवा में समर्पित रामकृष्ण संघ अपनी गौरव पताका के साथ विराजित है।

३. गुरु की परीक्षा – गुरु-शिष्य परम्परावाले देश में हम सभी कई गुरु और शिष्य से परिचित हैं, लेकिन किसी शिष्य के द्वारा गुरु की बार-बार परीक्षा लेनेवाले विवेकानन्द प्रथम और एकमात्र हैं। शिष्य के द्वारा गुरु की परीक्षा लेने पर गुरु परम आह्लादित होते थे, यह गुण भी गुरु की विलक्षणता को प्रदर्शित करती है। जैसे –

(अ) क्या आपने ईश्वर को देखा है? (प्रथम दर्शन में पूछा गया प्रश्न)

(ब) त्यागस्वरूप ठाकुर रामकृष्ण के बिस्तर के नीचे सिक्का रखकर उनकी सत्यता जाँचना।

४. बहुमुखी प्रतिभा के धनी – ध्यान सिद्ध स्वामी विवेकानन्द बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। स्वामीजी कुशल वादक, गायक, उत्कृष्ट कवि, उत्तम लेखक, प्रखर वक्ता तथा शास्त्र-मर्मज्ञ थे। साथ ही स्वामीजी निपुण वाचक भी थे। विशाल हृदयवाले स्वामीजी सदैव मानव हितैषी रहे। उनका देश और देशवासियों के प्रति प्रेम उत्कृष्ट था।

निर्भयता के प्रतीक स्वामीजी के सकारात्मक विचारों से विश्व सदैव अनुप्राणित हुआ है। उनके विचार कालजयी हैं और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में स्वतन्त्रता सेनानियों के लिये उनके विचार ऑक्सीजन के समान थे।

स्वामीजी की रचनाओं, पत्रों में भाषा और भाव विशेष हुआ करते थे। रामकृष्ण संघ में गायी जानेवाली सन्ध्या-आरती उन्हीं की रचना है। उन्होंने कई भजनों की रचना की। स्वामीजी के साहित्य में संस्कृत, ज्ञान, विश्व इतिहास, कला, स्थापत्य और मानव-प्रगति की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

५. मातृप्रेम – विरजा होम करके गृहस्थ आश्रम छोड़ने के बाद संन्यासी होते हुए भी स्वामी विवेकानन्द का जन्मदात्री माता के प्रति सदैव भक्ति और प्रेम था। स्वामीजी जब भी, जहाँ भी रहते, हमेशा माँ के प्रति चिन्तित रहते तथा कर्त्तव्य पूरा करने की कोशिश करते। वे अपने विश्वसनीय मित्रों एवं प्रियजनों से आग्रह कर अपने इस उत्तरदायित्व को पूर्ण करते थे। हम सभी के लिए यह एक अपूर्व दृष्टान्त है। माँ से उन्होंने बहुत कुछ सीखा और माँ की दी हुई सीख ने उनके जीवन को प्रभावित भी किया। माँ से प्राप्त शिक्षा को उन्होंने कई बार स्वीकार भी किया। विवेकानन्द का विवेकानन्द बनने में भुवनेश्वरी देवी का योगदान अतुल्य है। विवेकानन्द ने अपने जीवन में जिस ऊँचाई को प्राप्त किया है, वह आकस्मिक प्राप्त नहीं हुआ, माँ से उन्हें त्याग, सच्चरित्रता, जनसेवा की भावना विरासत में मिली थी। इतिहास साक्षी है, हर महान विभूति के बनने में माँ की भूमिका सर्वोपरि है।

६. देशप्रेम – स्वामीजी वनराज सिंह जैसे साहसी थे। स्थल हो या जल; 'भय' उनको छू भी नहीं सकता था। उनसे पहले किसी भी संन्यासी या ऋषि के द्वारा समुद्र में स्थित शिलाखण्ड में बैठकर ३ दिन, ३ रात ध्यान करने की बात ज्ञात नहीं होती। भारत के ऋषियों और मुनियों ने मानव समाज के उत्थान हेतु कठोर साधना की। लेकिन ध्यान में देशमाता का, 'भारत माता' का दर्शन केवल स्वामी विवेकानन्द को ही हुआ था। उनका तन-मन सब कुछ भारतमय था। उनके भारत शब्द के उच्चारण मात्र से सम्पूर्ण भारत अनुभूत होता था। अपने देश भारतवर्ष से उन्हें अत्यधिक प्यार था। भारतवर्ष उनके लिए केवल एक भौगोलिक भूखण्ड नहीं था। इसमें वे चैतन्य सत्ता का अनुभव करते थे। स्वामी विवेकानन्द अपना अपमान सहन कर लेते थे, लेकिन जन्मभूमि के प्रति अपमानजनक एक भी शब्द नहीं सुन सकते थे। उनके जीवन का आराध्य भारतवर्ष ही था।

१८९७ ई. में पाश्चात्य देशों में भारतीय संस्कृति और धर्म की विजय वैजयन्ती लहराकर जब स्वामीजी भारत लौटे, तब कोलम्बो के हिन्दू नागरिकों ने उनका भव्य स्वागत किया था। उस स्वागत के उत्तर में उनका व्याख्यान बहुत ही प्रसिद्ध है। उस व्याख्यान के आरम्भ में ही स्वामीजी ने भारत के प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रकट की थी। व्याख्यान के आरम्भ में ही स्वामीजी कहते हैं – ''पहले मैं भी अन्य हिन्दुओं की तरह विश्वास करता था कि भारत पुण्य भूमि है, कर्म भूमि है, पर आज मैं इस सभा के सामने खड़ा होकर दृढ़ता के साथ बारम्बार कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है। यदि पृथ्वी में ऐसा कोई देश है, जिसे हम पुण्यभूमि कह सकते हैं – यदि कोई ऐसा स्थान है, जहाँ पृथ्वी के सब जीवों को अपने कर्मफल भोगने के लिए आना पड़ता है, यदि कोई स्थान है, जहाँ भगवान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखनेवाले जीव मात्र को आना होगा, यदि कोई ऐसा देश है, जहाँ मानव जाति के भीतर क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है, यदि कोई देश है, जहाँ सर्वापेक्षा अधिक आध्यात्मिकता और अन्तर्दृष्टि का विकास हुआ है, तो मैं निश्चित रूप से यही कहूँगा कि वह हमारी मातृभूमि भारतवर्ष ही है।''

७. वेदान्तप्रचार – कई सौ वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध ने विश्व के पूर्वी भाग में बौद्ध धर्म के माध्यम से शान्ति-वाणी प्रचारित की थी। स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा पाश्चात्य में वेदान्त का प्रचार हुआ। दोनों ही विभूतियों के द्वारा भारत की गौरव-पताका विश्व प्रसिद्ध हुई। स्वामीजी ने सहज सरल अर्थ में वेदान्त का अर्थ समझाते हुआ कहा – ''मनुष्य के सच्चे स्वरूप को जानना। वेदान्त का यही सन्देश है कि यदि तुम व्यक्त ईश्वर के रूप में अपने भाई की उपासना नहीं कर

सकते हो, तो तुम उस ईश्वर की उपासना कैसे करोंगे।''[१]

स्वामीजी ने वेदान्त के माध्यम से अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस जी के विचार 'शिव भाव से जीव सेवा' को प्रचारित किया। एक बार स्वामीजी ने कहा – निन्दावाद को एकदम छोड़ दो। तुम्हारा मुँह बंद हो और हृदय खुल जाए। सारे जगत का उद्धार करो।

तुमलोगों में से प्रत्येक को सोचना होगा कि सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। वेदान्त का आलोक घर-घर ले जाओ। घर-घर में वेदान्त के आदर्श पर जीवन गठित हो। प्रत्येक जीवात्मा में जो ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, उसे जगाओ।[२]

आत्मज्ञान या अपने को जानना ही वेदान्त का उद्देश्य है। वेदान्त के मुख्य चार आधार हैं – ईश्वर एक है, सभी जीवों की आत्मा पवित्र होती है, अस्तित्व एवं धर्म की रक्षा तथा सभी धर्मों में समभाव। विवेकानन्द के आध्यात्मिक गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस जी ने मृत्यु के पहले उन्हें वेदान्त के अन्तिम सत्य से परिचित कराया और वह था जीवित ईश्वर (अर्थात् दरिद्र-नारायण, मूर्ख-नारायण, रोगी-नारायण, अज्ञानी-नारायण) की आराधना करना। उन्होंने विवेकानन्द को एक विशाल वटवृक्ष बनने की प्रेरणा दी, जिसकी छाया में सभी मानव शान्ति प्राप्त करें।

८. युवा वर्ग के प्रेरक – भुवन-विजयी स्वामी विवेकानन्द ने युवा वर्ग को बहुत प्रेरित किया। स्वामीजी को युवावर्ग से बहुत-सी आशा और आकांक्षाएँ थीं। स्वामीजी ने युवकों का आह्वान करते हुए कहा – ''बलशाली बनो, निर्भय बनो। मृदुल मधुर समीर जैसे मानव जीवन के लिए हितकारी है, वैसे ही युवावर्ग देश और मानव समाज के लिए आवश्यक है। यौवन की ऊर्जा दूसरों में उत्साह और स्फूर्ति भर देता है। इतिहास साक्षी है कि यौवन काल में कठिन से कठिन कार्य सम्पन्न करना सम्भव हो जाता है।

स्वामीजी कहते हैं – हे वीरहृदय युवको ! तुम विश्वास रखो कि अनेक महान कार्य करने के लिए तुम लोगों का जन्म हुआ है। कुत्तों की आवाज से न डरो, यहाँ तक कि यदि आकाश से प्रबल व्रजपात भी हो, तो भी न डरो। उठो! कमर कसकर खड़े होओ, कार्य करते चलो।[३]

अन्यत्र स्वामीजी कहते हैं – मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्ताओं का संग्रह करूँगा। वे सिंह के विक्रम से देश की यथार्थ उन्नति सम्बन्धी सारी समस्याओं का समाधान करेंगे। वर्तमान काल में अनुष्ठेय आदर्श को मैंने एक निर्दिष्ट रूप में व्यक्त कर दिया है और उसको कार्यान्वित करने के लिए मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। ... वे एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र का विस्तार करेंगे और इस प्रकार हम धीरे-धीरे समग्र भारत में फैल जायेंगे।[४]

९. विनोदप्रिय – उपनिषद का कथन, 'वयम् अमृतस्य पुत्राः' इस वाक्य को विवेकानन्द ने मानव जीवन में प्रचलित किया। जब मानव अमृत की सन्तान है, तो उसे तो आनन्द ही आनन्द मिलेगा। अतः वह सदा प्रसन्नचित्त रहेगा। विवेकानन्द जी स्वयं हमेशा आनन्दमय रहते थे। एवं सबको हँसने-हँसाने के लिये प्रेरित भी करते थे। वास्तव में स्वामीजी रसिक पुरुष थे। प्रायः लोगों की धारणा होती है कि आध्यात्मिक व्यक्ति विनोद नहीं करते, गम्भीर स्वभाव के होते हैं। स्वामीजी तो प्यार और विनोद से परिपूर्ण व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। यदा-कदा अनुशासनहीनता या त्रुटिपूर्ण कार्य के लिये डाँटते अवश्य थे, परन्तु उसके बाद प्रेम से गले भी लगाते थे।

स्वामीजी आत्मकथा में कह रहे हैं – देखो, मैं जब रात में घर में जाकर सोता हूँ, तब कुछ देर मौन रहता हूँ, फिर मेरे अन्दर इतना आनन्द भर जाता है कि मैं और लेटकर नहीं रह सकता। देखता हूँ जगत आनन्दमय है। जीव-जन्तु, अकाश, पृथ्वी सब आनन्द से पूर्ण है। तब उठकर घर के अन्दर नाचता हूँ। वह आनन्द हृदय में नहीं रख सकता। इतना कहकर स्वामीजी बालक के समान नाचते हुये कहने लगे – आनन्द करो ! आनन्द करो ! दुखी मत हो। सब परिपूर्ण हो जाएगा। आनन्दमयी माँ सर्वत्र हैं। सब परिपूर्ण हो जाएगा।[५]

स्वामीजी द्वारा कथित एक विनोदपूर्ण कहानी

एक बार एक मेढक के घर यज्ञ होगा, लेकिन पैसा पूरा खर्च हो गया। मेढक मच्छर के घर जाकर बोला – 'भाई, हम लोगों के घर हवन होगा, बहुत लोग आएँगें, तुम सबको भी निमन्त्रण है। तुम मुझे कुछ रुपए उधार दो। कुछ दिन बाद वापस कर दूँगा। मच्छर ने मेढक को कुछ रुपए उधार दिए। मेढक ने घर आकर हवन किया। इसके बाद वर्षा ऋतु आ गई। मच्छरों का दल मेंढक के घर आकर लगातार बोले – रुपए दो भाई, रुपए दो भाई। मेढक खा-खाकर मोटा हो

गया था, पानी में छाती तक डूबकर बैठा था। मच्छर वहाँ तक नहीं जा सकते, इसलिए ऊपर से बोलने लगे – भाई रुपए दो। मेढक पेट को फूला-फूलाकर बोलने लगा – कौन किसका रुपया लिया। कौन किसका रुपया लिया। मच्छर आश्चर्यचकित हो गए। मच्छर पेड़ के ऊपर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद साँप आया। उसने मेढक को पकड़कर थोड़ा सा निगल लिया। मेढक की साँस अटक गई। उसी अवस्था में मेढक त्राहि-त्राहि करते हुए बोलने लगा – रुपए लो, रूपए लो। मच्छरों का दल कहने लगा – अब साँप के पेट में जाओ। अब साँप के पेट में जाओ।

महेन्द्रनाथ ने लिखा – कहानी में नरेन्द्र मच्छरों का गुनुगुन आवाज और मेंढक की आवाज निकाल कर विविध प्रकार की भाव-भंगिमा करते हुए कहते और हम सब हँसते हुए सो जाते थे।

विवेकानन्द बचपन से ही छोटे भाई-बहनों को विनोद पूर्ण कहानी सुनाकर उनका मनोरंजन करने में सिद्धहस्त थे।[६]

१०. संगीतकार – स्वामीजी एक महान संगीतज्ञ थे। उनके जीवन में संगीत नैसर्गिक रूप से विद्यमान था। संगीत तो सबके जीवन में होता है, परन्तु उसका प्राकट्य किसी किसी के जीवन में स्पष्ट दिखाई देता है। गीत सभी गाते हैं, कोई ऐसे ही गाता है, कोई भक्ति में गाता है। भक्ति में गाया गीत साधना का ही पर्याय है। प्रथम भेंट के समय विवेकानन्द का गाया गीत सुनकर श्रीरामकृष्ण आनन्द-विभोर हो गए थे। उन्होंने संगीत की शिक्षा औपचारिक रूप से प्राप्त की थी। उन्हें कई प्रकार के वाद्य-यंत्रों का भी ज्ञान था, जैसे – तबला, सितार और पखावज आदि। संगीतशास्त्रों का भी उन्होंने अध्ययन किया था।

विवेकानन्द के जीवन में संगीत का महत्त्व बहुत था। उन्होंने 'संगीत कल्पतरु' नामक एक ग्रंथ की रचना भी की थी, लेकिन दुर्भाग्य से यह ग्रंथ पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ। स्वामीजी द्वारा रचित रामकृष्ण संघ की सन्ध्या आरती यमन राग, ध्रुपद शैली और चौताल में निबद्ध है। राग की शुद्धता और कीर्तन का भाव इस भजन में दृष्टिगोचर होता है। संगीत का ज्ञान होने का यह एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

११. भारतीय संस्कृति के पोषक – पिछले कई सौ वर्षों से वैदिक संस्कृति संकीर्ण विचार-धारा से ग्रसित थी। समय के अन्तराल में हम शंकराचार्य को देखते हैं, जिनकी प्रज्ञा से भारतवर्ष पुन: गुंजित हो उठा। इसी धरोहर को स्वामीजी ने प्राण फूँककर प्रतिष्ठित कर दिया। दोनों ही विभूति संन्यासी थे। त्याग और सेवा के साथ 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' ध्येय वाक्य लेकर विवेकानन्द ने रामकृष्ण संघ की स्थापना की, जो विगत १२५ वर्षों से इस धरा पर अपने नि:स्वार्थ कर्मयोग की ज्योति प्रज्वलित किए जा रहा है।

भारतीय संस्कृति में हमेशा नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा गया। हमारे देश में परम्परानुसार माता-पिता, राधे-श्याम, सीता-राम कहा जाता है। इसी की झलक हमें शिकागो भाषण के प्रथम सम्बोधन में भी दिखाई देती है। स्वामीजी के श्रीमुख से सम्बोधन में अमेरिका निवासी 'बहनो और भाइयो' कहा गया। यह हिन्दू सनातन धर्म के अनुसार मातृशक्ति को विशिष्ट स्थान देने का सूचक है।

इस सम्बोधन का दूसरा पक्ष यह भी स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारी प्राचीन विरासत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का परिचायक है। हमारे देश में जो भी विदेशी या अन्य कोई आया, उसे हमने अपना लिया। आज विश्व के कई देश परस्पर आक्रमण और युद्ध कर रहे हैं, जबकि भारतवर्ष ने आज तक किसी भी देश पर आक्रमण नहीं किया, अपितु देश में आगत विभिन्न धर्म और जाति के पीड़ित लोगों को शरण दी।

१२. श्रमिकों के शुभ चिन्तक – विवेकानन्द जिन्होंने अपनी प्रतिभा और तेजस्विता से सम्पूर्ण संसार को प्रभावित किया, उनका विशाल हृदय सदैव भूखे, प्यासे, अशिक्षित, गरीब लोगों के लिये व्याकुल रहता था। भारतीय जनसाधारण से उन्हें बहुत प्रेम था। विदेश में रहते हुए भी उन्हें उपेक्षित, अभावग्रस्त, दुखी, अज्ञानी लोगों की चिन्ता सताती थी। वे उनके दुख को सोच-सोचकर सारी रात रोते रहते थे। अपने अनुभव से विवेकानन्द ने जान लिया था कि देश का हित राजाओं और धनी से नहीं होगा। देश के कल्याण के लिये दीन-दुखियों का उत्थान और विकास करना होगा। स्वामीजी हमेशा श्रमिकों को आत्मविश्वासी और स्वावलम्बी बनाने पर जोर देते थे।

कलकत्ता में प्लेग के समय रोगी-नारायण के दुख में कातर विवेकानन्द के मन में, सेवा-कार्य हेतु पैसे की व्यवस्था करने के लिए बेलूड़ मठ की जमीन तक बेचने का

विचार आया था, जिससे सेवा-कार्य निर्विघ्न होता रहे। पर माँ सारदा की कृपा से बेलूड़ मठ सुरक्षित रहा।

विवेकानन्द जी कहते हैं – 'महामोहग्रस्त लोगों की ओर दृष्टिपात करो ! हाय ! हृदयभेदकारी करुणापूर्ण उनके आर्त्तनाद को सुनो। हे वीर, बद्धों को पाशमुक्त करने, दरिद्रों के कष्ट को कम करने के लिए तथा अज्ञजनों का हृदयान्धकार दूर करने लिए आगे बढ़ो, डरो नहीं, डरो नहीं, यही वेदान्त दुन्दुभि का स्पष्ट उद्घोष है।[७]

विवेकानन्द के विचारों को कार्यान्वित करने के लिए रामकृष्ण मिशन के द्वारा 'गदाधर अभ्युदय प्रकल्प' आरम्भ किया गया है। संक्षेप में जिसे Gap कहा जाता है, अर्थात् मस्तिष्क और मन के बीच की 'दूरी' को कम करने के लिए कार्य (सम्पूर्ण शरीर की सहायता से) करना पड़ेगा, चाहे कर्म करने में हाथ या शरीर को कष्ट हो या मैला हो, सहन करना पड़ेगा। क्योंकि यही सच्ची ईश्वर-पूजा है।

१३. अभूतपूर्व गुरुभक्ति – श्रीरामकृष्ण अपने शिष्यों में जितना सर्वोच्च आसन नरेन्द्र को देते थे, उतना ही नरेन्द्र की गुरुभक्ति सर्वोच्च और अतुलनीय थी। जब ठाकुरजी अस्वस्थ थे, उन दिनों कैंसर रोग के सम्बन्ध में लोगों को अधिक जानकारी नहीं थी। वर्तमान समय में सब यह जानते हैं कि कैंसर रोग संक्रमित नहीं होता है। ठाकुरजी का रोग जब बढ़ गया, तब कई लोग आपस में संक्रमित रोग के विषय में आलोचना करते थे, उन लोगों के भाव से आत्मरक्षा की प्रवृत्ति झलकती थी। लोगों के इस भाव का दमन करने के लिए विश्वास की प्रतिमूर्ति, प्रज्वलित अग्नि के सदृश नरेन्द्रनाथ एक दिन ठाकुरजी के पथ्य ग्रहण करने के बाद उनका 'पस रक्तयुक्त थूक' पथ्य का पात्र हाथ में लेकर बिना हिचकिचाहट के बचा हुआ पथ्य पी गए। उस दिन से सबका सन्देह हमेशा के लिए शान्त हो गया। ऐसे ही कई बार अपने आत्मबल से एवं ठाकुरजी की शिक्षा के कारण नरेन्द्रनाथ विवेकानन्द बन गए।[८]

१४. शिक्षा – ज्ञान मानव-शरीर का भूषण है। ज्ञान के बिना देश-विदेश, साहित्य, विज्ञान, इतिहास एवं अन्य बहुत कुछ जानना असम्भव है। इसलिए ज्ञान-अर्जन के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। जन-साधारण की उन्नति का सूत्र ही है – शिक्षा। विवेकानन्द सदैव देश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिये प्राणपण से प्रयास तथा सबको प्रेरित करते थे। शिक्षा के अन्धकार में डूबे भारतीयों के लिये 'मनुष्य निर्माणकारी शिक्षा', कारीगरी शिक्षा और 'व्यावहारिक शिक्षा' को उन्होंने महत्त्व दिया। स्वामीजी के अनुसार शिक्षा का अर्थ है, उस पूर्णता को अभिव्यक्त करना, जो सभी मनुष्यों में पहले से विद्यमान है।[९]

विवेकानन्द ने नारियों में व्याप्त अशिक्षा को समाप्त करने के लिए 'मार्गरिट नोबल' को भारत लाकर निवेदित किया, जिन्होंने नारियों की शिक्षा के लिए अथक परिश्रम किया। विवेकानन्द के विचारानुसार स्त्रियाँ ही स्त्रियों को उचित शिक्षा दे सकती हैं। पुरुषों को उनके कार्य में सहायक होना चाहिए।।

श्रीमाँ सारदा देवी इस युग में नारी-जीवन के सर्वांगीण, पूर्ण आदर्श के रूप में अवतरित हुई थीं। उनके जीवन और उपदेशों के अनुसार महिलाओं को अपना जीवन-गठन करने की प्रेरणा मिलती है। विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन के द्वारा देश के कई स्थानों में विविध स्तर पर विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जा रही है। रामकृष्ण मिशन के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे कार्य की सरकार तथा कई संस्थाओं ने प्रशंसा की है। स्वामीजी के मतानुसार शिक्षा स्थानीय बोलचाल की भाषा में होनी चाहिए, साथ ही भाषा को सहज, सरल होना भी सर्वोपरि है। अगर गरीब शिक्षा लेने नहीं आ सकते, तो शिक्षा को ही उनके पास खेतों, कारखानों या हर जगह पहुँचना होगा। शिक्षा सकारात्मक होनी चाहिए। नकारात्मक भावना मनुष्य को दुर्बल बनाती है। सकारात्मक शिक्षा से सभी समस्याओं का समाधान सम्भव है।

चिर यौवन के प्रतीक स्वामीजी एक असामान्य चिन्तक, देशभक्त, मानव-हितैषी सर्वकल्याणकारी नर-ऋषि के रूप में विख्यात हैं। उनके पत्र, भाषण मानव को ऊर्जा, उत्तम विचार से उद्बोधित करते हैं। उन्होंने हिन्दूधर्म की ध्वजा को विश्व में फहराया। परतन्त्रता की जंजीर से जकड़ा भारत विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित होकर स्वतन्त्र होने में समर्थ हुआ। किन्तु आजादी के ७५ वर्ष बाद देश में सहिष्णुता, सौहार्द और विकास के लिए विवेकानन्द सदैव अपरिहार्य हैं। स्वामीजी का अवलम्बन लेकर ही हमारा देश पुनः विश्वगुरु होगा। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. व्यवहारिक जीवन में विवेकानन्द, पृष्ठ ५१ **२.** भारत में विवेकानन्द, पृष्ठ-१२२ **३.** पत्रावली भाग १,पृष्ठ-१६६, १६७ **४.** स्वामी विवेकानन्द वार्तालाप, पृष्ठ-७४ **५.** सहास्य विवेकानन्द, लेखक - शंकरी प्रसाद बसू, पृष्ठ-९९ **६.** वही, पृष्ठ-८०-८१ **७.** पत्रावली, भाग-२, पृ-६९ **८.** युगनायक विवेकानन्द, लेखक स्वामी गम्भीरानन्द, प्रथम खण्ड, पृष्ठ-१६३ **९.** पत्रावली, भाग-१, पृष्ठ-११४

प्रश्नोपनिषद् (४४)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

तीन अक्षरों वाले ओंकार की उपासना का फल

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीव-घनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः।।५/५।।

अन्वयार्थ – यः पुनः (परन्तु जो व्यक्ति), त्रिमात्रेण (अ-उ-म् – इन तीन मात्राओं वाले), ओम् इति (ॐ को), एतेन एव अक्षरेण (इसी अक्षर के रूप में) (ओंकार-रूप प्रतीक के द्वारा), एतम् (इन – सूर्यमण्डल में स्थित), परम् पुरुषम् (सर्वोच्च पुरुष का), अभिध्यायीत (सतत, आत्मा के रूप में ध्यान करते हैं), सः (वे) तेजसि (ज्योर्तिमय) सूर्ये (सूर्यमण्डल में) सम्पन्नः (स्थित हो जाते हैं)। यथा (जैसे), पादोदरः (सर्प), त्वचा (अपनी जीर्ण केंचुली से), विनिर्मुच्यते (मुक्त होता है), एवम् ह वै (ठीक वैसे ही) सः (वे) पाप्मना विनिर्मुक्तः (पाप से मुक्त होकर), सामभिः (तृतीय मात्रा रूप सामवेद के मन्त्रों द्वारा), ब्रह्मलोकम् (ब्रह्मलोक को), उन्नीयते (ले जाये जाते हैं), सः (वे) एतस्मात् (इस) परात् (स्थावर तथा जंगम से श्रेष्ठ) जीवघनात् (जीवों के सूक्ष्म-शरीर के समष्टि-रूप – हिरण्यगर्भ से भी), परम् (उत्कृष्ट), पुरिशयम् (सभी शरीरों में स्थित), पुरुषम् (पुरुष अर्थात् परमात्मा को), ईक्षते (देखते हैं), तत् (उसी विषय के) एतौ (ये दो) श्लोकौ (श्लोक) भवतः (हैं)।।५।।

भावार्थ – परन्तु जो व्यक्ति अ-उ-म् इन तीन मात्राओं वाले ओंकार (ॐ) इसी अक्षर के रूप में, उन (सूर्य-मण्डल में स्थित) परम पुरुष का निरन्तर आत्मा के रूप में ध्यान करते हैं, वे ज्योतिर्मय सूर्य-मण्डल में स्थित हो जाते हैं। जैसे सर्प अपनी जीर्ण केंचुली से मुक्त होता है, ठीक वैसे ही वे पाप से मुक्त होकर, तृतीय मात्रा रूप सामवेद के मन्त्रों द्वारा ब्रह्मलोक को ले जाये जाते हैं। वे इस स्थावर तथा जंगम से श्रेष्ठ जीवों के सूक्ष्म-शरीर के समष्टि-रूप हिरण्यगर्भ से भी उत्कृष्ट, सभी शरीरों में स्थित पुरुष अर्थात् परमात्मा को देखते हैं, उसी विषय के ये दो श्लोक हैं।।५/५।।

भाष्य – यः पुनरेतं ओंकारं त्रिमात्रेण त्रिमात्रा-विषय-विज्ञान-विशिष्टेन ओम् इति एतेन एव अक्षरेण (प्रतीकेन) परं सूर्यान्तर्गतं पुरुषं प्रतीकेन अभि-ध्यायीत तेन अभिध्यानेन – प्रतीकत्वेन हि आलम्बनत्वं प्रकृतम् ओंकारस्य परं चापरं च ब्रह्म-इति अभेद-श्रुतेः ओंकारम् इति च द्वितीया-अनेकशः श्रुता बाध्येत-अन्यथा।

भाष्यार्थ – फिर जो व्यक्ति इस ओंकार को त्रिमात्रा (अ-उ-म्) वाले ओम्-रूपी शब्द के विषय में विशेष रूप से जानकर, उसे सूर्य-अभिमानी पुरुष का प्रतीक मानकर (इसके द्वारा) परम् ब्रह्म का ध्यान करता है, वह इस प्रतीक के अवलम्बन से सूर्यलोक को प्राप्त होता है (अर्थात् सूर्य के साथ एकाकार हो जाता है); नहीं तो, श्रुति (मन्त्र २) ने जो वास्तविक ओंकार के पर-ब्रह्म तथा अपर-ब्रह्म रूप को अभिन्न बताया है, वह बाधित हो जाएगा।

भाष्य – यद्यपि तृतीया-अभिध्यानत्वेन करणत्वम् उपपद्यते तथापि प्रकृत-अनुरोधात् त्रिमात्रं परं पुरुषम् इति द्वितीया एव परिणेया 'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे' (महाभा. उ. ३७/१७) इति न्यायेन।

भाष्यार्थ – ओंकार को तृतीया कारक मानने से, उसका ध्यान करण (उपाय) बन जाता है, तथापि वास्तविकता (विषय) के अनुरोध से 'त्रिमात्रायुक्त परम पुरुष' को द्वितीया कारक में परिणत कर लेना चाहिये, जैसाकि (महाभारत में) कहा गया है, 'कुल के हितार्थ एक को त्याग देना चाहिये'। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द जयन्ती विशेष

स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का आकस्मिक मिलन

डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी

भारत के नवजागरण की शंख-ध्वनि करनेवाले महापुरुषों में नर-शार्दूल युवा-संन्यासी, राष्ट्रभक्त और दक्षिणेश्वर के महान सन्त श्रीरामकृष्ण परमहंस (आविर्भाव १७-०२-१८३६, महासमाधि १५-०८-१८८६) के शिष्य स्वामी विवेकानन्द जैसे दुर्लभ देव-मानव युग-युगान्तर में एकाध बार अवतीर्ण होते हैं। प्रतिभा, पाण्डित्य और पौरुष के जीवन्त विग्रह, बाल ब्रह्मचारी और योगी विवेकानन्द का जन्म १२ जनवरी, १८६३ ई. सोमवार को कलकत्ता के बंगाली कायस्थ दत्त परिवार में हुआ था।

कहा जाता है कि वंश का इतिहास संस्कार की गरिमा में फलता और पनपता है तथा सदा अमर रहकर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। इस प्राचीन वंश की गौरवमय कहानी भारतीय संस्कृति की प्राचीनता का अनुपम उदाहरण है। विवेक के आनन्द स्वामी के वंश का इतिहास भी ऐसा ही है – दिव्य और गौरव से भरा इतिहास।

नरेन्द्रनाथ दत्त (बाद में स्वामी विवेकानन्द) कलकत्ता के स्कॉटिश मिशनरियों द्वारा स्थापित 'जेनरल एसेम्बली एजुकेशन' के छात्र हुए। उन्होंने अपनी मेधा शक्ति से भारतीय तथा अंग्रेज प्राध्यापकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। कॉलेज के प्रिंसिपल बी.डब्ल्यू.डब्ल्यू. हेस्टी ने एक बार अंग्रेजी कवि वर्डस्वर्थ की कविता पढ़ते हुए कहा था, ''प्राकृतिक दृश्यों को देखकर महाकवि को जो ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द मिलता था, उसे हम क्या जानें? इस आनन्द के ज्ञाता यदि कोई हैं, तो वे हैं दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण परमहंस।'' नरेन्द्र को लगा कि उन्हें मनचाही राह मिल गई। वे गुणों के भंडार थे। उनके चरित्र की पवित्रता और विचित्रता का क्या कहना? चरित्र का ही दूसरा नाम व्यक्तित्व है। सच्चे व्यक्तित्व वाले की वाणी तप:पूत एवं मंगलमयी होती है, उसमें मधु का माधुर्य होता है, नवनीत की कोमलता होती है, चाँदनी की शीतलता होती है। उसके भीतर प्रेम का सागर लहराता है। सच्चे व्यक्तित्ववान् तो वे ही होते हैं, जो युग-युग के मानव को जीवन की शाश्वत ज्योति दे जाते हैं। सच्चे व्यक्तित्वान् तो वे ही होते हैं, जो जन-जन के मन में देव रूप में स्थापित हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तित्ववान संसार में थोड़े ही होते हैं, पर इन थोड़े लोगों से ही मानवता का इतिहास महिमामंडित है। ऐसे व्यक्तित्व के लिए लम्बी साधना, कठोर तपस्या करनी होती है।

नरेन्द्र दत्त ने सन् १८८४ ई. में कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। उनमें प्रबल आध्यात्मिक भूख थी। सन् १८८० के नवम्बर मास में महान दार्शनिक रामकृष्ण परमहंस से नरेन्द्र का प्रथम परिचय हुआ। उस सच्चे गुरु के अध्यात्म-तत्त्व और वेदान्त रहस्य जानकर इनके हृदय की कली खिल उठी, मन मयूर सदृश हो गया। उनकी आध्यात्मिक पिपासा शान्त हो गई।

एक दिन नरेन्द्र ने माँ काली के महान उपासक रामकृष्ण के समक्ष जाकर पूछा, ''क्या आपने ईश्वर को देखा है?'' उन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया, ''मैंने उसे देखा है, वैसे ही जैसे मैं तुम्हें अपने सामने देख रहा हूँ।''

नरेन्द्र दत्त परमहंस से प्रभावित होकर उनके दिव्य पवित्र चरण कमलों में नतमस्तक होकर श्रद्धा-भक्ति से ५ वर्ष ९ महीने तक गूढ़ अध्यात्म विद्या को हृदयंगम करते रहे। १५ अगस्त, १८८६ ई. की मध्यरात्रि में परमहंसजी ने नश्वर शरीर का परित्याग किया। समाधि लेने के कुछ दिनों पूर्व एक दिन रात को नरेन्द्र की ओर अपलक नेत्रों से देखते हुए उन्होंने कहा, मैं तुझे सब कुछ देकर फकीर हो गया। परमहंसजी की वाणी में बिजली की-सी शक्ति थी।

श्रीरामकृष्ण परमहंस की महासमाधि के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द राष्ट्र-भ्रमण को निकले, उसी दौरान उन्हें ज्ञात

हुआ कि अमेरिका में विश्व-धर्म सम्मेलन होने जा रहा है। हिन्दू धर्म का उनसे बड़ा ज्ञानी तथा सुवक्ता और था ही कौन? भक्त-मंडली की सहायता से इस पवित्र यात्रा पर बिना बुलाए ३१ मई, सन् १८९३ ई. को स्वामीजी ने अमेरिका के लिये प्रस्थान किया।

११ सितम्बर, १८९३ ई. को शिकागो के कोलम्बस हॉल में आयोजित विश्वधर्म सभा के मंच पर युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द के रूप में मानो स्वयं श्रीरामकृष्ण उपस्थित हो गए थे। संसार भर के धर्मों के दिग्गज विद्वान प्रतिनिधियों के रूप में वहाँ आए हुए थे। स्वामी विवेकानन्द उन प्रतिनिधियों में सबसे कम आयु के तेजस्वी सुवक्ता संन्यासी थे। उस समय उनकी आयु ३० वर्ष, ८ महीने थी। उस धर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द के मुख से धर्मतत्त्व और अध्यात्म का जो ब्रह्मवारि प्रवाहित हुआ था, उसमें मानो रामकृष्ण-भावधारा की ही उत्ताल तरंगें प्रवाहित हो रही थीं।

विश्वधर्म सम्मेलन के अध्यक्ष महान विद्वान डॉक्टर बेन्जामिन ने श्रोताओं को इनका संक्षिप्त परिचय दिया। तब नर-शार्दूल परम तेजस्वी और ओजस्वी स्वामी विवेकानन्द भाषण देने उठे और उन्होंने जब 'अमेरिकावासी बहनो और भाइयो' सम्बोधन किया, तो लगा कि प्रशंसा की शब्द-ध्वनि से हॉल की छत ही उड़ जाएगी। उन्होंने बलताया कि हिन्दू धर्म ही संसार के सारे धर्मों का जनक है।

शिकागो सम्मेलन में स्वामीजी ने जिस ज्ञान, जिस उदारता, जिस विवेक और जिस वाग्मिता का परिचय दिया, उससे वहाँ के सभी लोग मंत्र-मुग्ध और पहले ही दिन से, उनके भक्त हो गए। उनके भाषणों पर टिप्पणी करते हुए – 'द न्यूयॉर्क हेराल्ड' ने लिखा था कि धर्मों की पार्लियामेंट में सबसे महान व्यक्ति विवेकानन्द हैं।

व्यक्ति की महानता की परीक्षा प्रलोभनों एवं विपरीत परिस्थितियों में होती है। शिकागो धर्म महासभा के आरम्भिक अधिवेशन में प्रखर ज्योति स्वरूप प्रगल्भ वक्ता स्वामी विवेकानन्द के द्वारा 'सिस्टर एंड ब्रदर्स ऑफ अमेरिका' इन शब्दों का उच्चारण हुआ त्यों ही सभागृह तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा, जो ध्वनि निरन्तर दो मिनट तक होती रही। भाषण के बाद सैकड़ों महिलाएँ स्वामीजी का अभिवादन करने, उनसे हाथ मिलाने अथवा उनका गैरिक वस्त्र स्पर्श करने के लिए उनकी ओर चलीं। यह देख सभा में उपस्थित एक वृद्धा ने मन ही मन कहा, 'पुत्र, यदि तुम इस प्रलोभन के वार को सहन कर सको तो तुम सचमुच देवता हो...'' परवर्तीकाल में इसी वृद्धा ने अपने घर में स्वामीजी का एक बड़ा चित्र लगवाया था तथा स्वामीजी ने उनका आतिथ्य स्वीकार कर कई दिनों तक उनके घर में निवास भी किया था। स्वामीजी ने सभी प्रकार के कांचन-कामिनी सम्बन्धी प्रलोभनों पर अनायास ही विजय प्राप्त की थी। अमेरिका में उनका प्रवचन सुनकर एक करोड़पति युवती अपनी समस्त सम्पत्ति सहित स्वामीजी की सेविका बनने को प्रस्तुत हुई। स्वामीजी ने विनम्रतापूर्वक उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

एक बार किसी ने स्वामीजी से पूछा कि शिकागो धर्म महासभा में प्रथम प्रवचन के पूर्व 'सिस्टर एण्ड ब्रदर्स ऑफ अमेरिका' बोलते समय क्या आपने किसी यौगिक शक्ति का प्रयोग किया था, जिससे समग्र सभा विमुग्ध हो गई थी? इसके उत्तर में स्वामीजी ने स्वीकार किया कि यह कार्य एक शक्ति विशेष द्वारा सम्पन्न हुआ था और वह थी ब्रह्मचर्य की पवित्रता की शक्ति। उनकी सफलता का रहस्य यह था कि उन्होंने अपने समग्र जीवन में कभी कोई अपवित्र विचार नहीं किया। हम सामान्यजन जो प्रतिदिन वर्षों तक अपने अपवित्र विचारों के साथ जूझते रहते हैं, क्या स्वामीजी की इस महानता की कल्पना कर सकते हैं?

स्वामी विवेकानन्द ऐसे महापुरुष थे, जो सदा दूसरों को बड़ा बनाना चाहते थे। सच्चा महान व्यक्ति तो वह है, जो अपनी महानता को छिपाकर दूसरों की प्रगति एवं उन्नति में हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव करे।

स्वामी रामतीर्थ से भेंट-वार्ता

अमेरिका से लौटकर भारत में अनेक स्थानों में व्याख्यानादि देने के बाद स्वामीजी अलमोड़ा में विश्राम कर रहे थे। अचानक ९ अगस्त, १८९७ ई. को अलमोड़ा छोड़कर स्वामीजी पंजाब और कश्मीर की यात्रा पर निकल पड़े। बरेली, अम्बाला, अमृतसर और रावलपिंडी होकर वे कश्मीर पहुँचे। पुन: वे पंजाब की राजधानी और विद्या की नगरी लाहौर आए। यह शुभ समाचार सुनकर कृष्णप्रेमी गणितशास्त्र के प्रतिभाशाली प्रोफेसर तीर्थराम गोस्वामी, एम.ए. की हृदय की कली खिल उठी। वे प्रसन्नता से झूमने लगे।

उन दिनों प्रो. तीर्थराम गोस्वामी सनातन धर्मसभा लाहौर के महामंत्री थे, इस नाते उन्हें स्वामी विवेकानन्द की सेवा करने का पूरा अवसर मिला। कहा जाता है कि – हरेरिच्छा बलीयसी। प्रो. तीर्थराम ने ही उनके भाषणों का सारा प्रबन्ध लाहौर में सनातन धर्म सभा की ओर से राजा ध्यान सिंह की हवेली में किया था। सनातन धर्मावलम्बियों ने आन-बान-मान से विलक्षण और तेजस्वी संन्यासी स्वामी विवेकानन्द का शानदार अभिनन्दन किया। स्वामी विवेकानन्द ने वहाँ क्रमश: १० नवम्बर, १८९७ ई. को 'हिन्दू धर्म की साधारण नींव', ११ नवम्बर को 'भक्ति' और १२ नवम्बर को 'वेदान्त' विषय पर धाराप्रवाह व्याख्यान दिया।

उन्होंने सिंह गर्जना करते हुए पंजाब की पवित्र भूमि के प्रति अपनी श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुए कहा – 'यह वही भूमि है, जिसने अपनी सभी आपदाओं को झेलते हुए अभी तक अपना गौरव और तेजस्विता की कीर्ति को पूर्णत: नष्ट नहीं होने दिया है। यही वह भूमि है, जहाँ दयालु नानक देव ने अवतीर्ण होकर अद्‌भुत विश्वप्रेम का उपदेश दिया और यह वही भूमि है, जिसने अपना विशाल हृदय खोलकर समस्त संसार को गले लगाने के लिए उन्मुक्त हृदय से हाथ फैलाए।''

'वेदान्त' पर स्वामीजी के सारगर्भित और शानदार ओजस्वी व्याख्यान का प्रो. तीर्थराम पर गहरा प्रभाव पड़ा।

स्वामी जयानन्द ने अपनी पुस्तक 'आचार्य स्वामी विवेकानन्द' में लिखा है कि ''प्रो. तीर्थराम जी ने स्वामीजी के प्रति विशेष आकर्षण का अनुभव किया था। १३ नवम्बर को उन्होंने स्वामीजी को अपने घर आमन्त्रित कर भोजन कराया और यूरोप तथा अमेरिका में वेदान्त-प्रचार के विषय में उनसे चर्चा भी की। स्वामीजी ने उनका सात्त्विक स्वभाव और वेदान्तनिष्ठा देखकर इस कार्य के लिए प्रेरणा देते हुए कहा – ''आप जैसे पवित्र और जीवन्त विद्वान का यह कर्तव्य है कि वह इस महान कार्य को अपने जीवन का लक्ष्य बनाए। इससे गोस्वामीजी का सुप्त वैराग्य भाव जाग्रत हो गया, जो अन्त में उन्हें संन्यास आश्रम में खींच लाया।''

स्वामी विवेकानन्द के दर्शन मात्र से प्रो. तीर्थराम के मन और जीवन में विलक्षण परिर्वतन हुआ। यही है चरित्र की पवित्रता और विचित्रता का रहस्य। निर्मल हृदय के संस्पर्श से ही मन में आमूल परिवर्तन होने लगता है। वैराग्य और तप के मूर्तिमान प्रतीक थे प्रो. तीर्थराम। सच तो यह है कि प्रो. तीर्थराम स्वामी विवेकानन्द की योग-शक्ति, वैराग्य, वाक्‌शक्ति और वेदान्त निष्ठा से प्रभावित होकर उनके समक्ष नतमस्तक हो गए। प्रो. तीर्थराम के मन की सुप्त वैराग्य भावना को जाग्रत करने के लिए ही मानो स्वामीजी का लाहौर में व्याख्यान का कार्यक्रम हुआ था।

स्वामी अपूर्वानन्द ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'युग प्रवर्तक विवेकानन्द' में स्पष्ट उल्लेख किया है कि स्वामीजी का संग उनके जीवन में एक महान शुभ मुहूर्त था। भोजन के अन्त में स्वामीजी भजन गाने लगे – 'जहाँ राम तहाँ काम नहीं, जहाँ काम नहीं राम।'' भजन की मर्मवाणी प्रो. तीर्थराम के अन्तस् में बार-बार आघात करने लगी। उन्होंने अपनी सोने की घड़ी स्वामीजी को उपहार के रूप में दी। स्वामीजी ने उसे ग्रहण तो किया, पर उसे तीर्थराम के जेब में डालकर कहा – 'अच्छी बात मित्र ! इसी जेब में मैं अब से इस घड़ी का उपयोग करूँगा।'

यहाँ उल्लेखनीय है कि विदा होते समय स्वामीजी ने प्रो. तीर्थराम जी के निजी पुस्तकालय से एक पुस्तक अपने लिये ली थी।

स्वामी विवेकानन्द लाहौर छोड़कर अन्यत्र चले गए। लेकिन प्रो. तीर्थराम के कर्णकुहरों में उनके अन्तिम प्रवचन के ये शब्द गूँज रहे थे – ''बिना त्याग के कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता। हमें अपनी सुख-सुविधाओं को त्यागना है। भोग-विलास, पद और कीर्ति का भी त्याग करना है। इसके अलावा हमें अपने प्राणों को न्यौछावर करने के लिए तैयार रहना है। भारत माँ नौजवानों का बलिदान चाहती है। तभी देश का उद्धार होगा।''

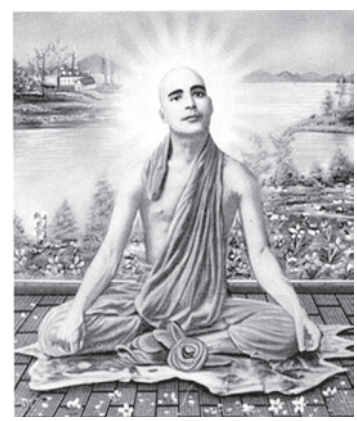
स्वामी रामतीर्थ

सम्भवत: उसी समय से प्रो. तीर्थराम जी के मन में संन्यासी बनकर वेदान्त का निर्मल संदेश देने का विचार आया।

सच तो यह है कि प्रो. तीर्थराम (बाद में स्वामी रामतीर्थ)

के अन्त:करण में ज्ञान की जो ज्योति जली, वह स्वामी विवेकानन्द के 'आकस्मिक मिलन' का ही परिणाम थी। कहा भी गया है – साधुदर्शनं पुण्यम्' अर्थात् संत, ऋषि, ब्रह्मज्ञ पुरुष के दर्शन मात्र से पुण्य होता है।

१४ जुलाई, १९०० ई. को प्रोफेसर के पद से त्यागपत्र देकर प्रो. तीर्थराम – 'राम की खोज में भटकता राम', हिमालय की ओर प्रस्थान कर गए। वहाँ उन्होंने सतत आत्म साधना की। पुन: धर्म प्रचार हेतु २८ अगस्त, १९०२ ई. को उन्होंने समुद्री जहाज से कलकत्ता से जापान के लिए प्रस्थान किया। जापान की राजधानी टोकियो में प्रो. सरदार पूर्ण सिंह से भेंट हुई। स्वामी रामतीर्थ को देखकर उनका तत्काल मन परिवर्तित हो गया। निबन्धकार प्रो. सरदार पूर्ण सिंह ने एक स्थान पर लिखा है – मैं पुरानी पुस्तकों की दुकान से दो बड़े-बड़े ग्रन्थ, जिनमें ११ सितम्बर, १८९३ ई. में विश्वधर्म सम्मेलन के कार्यक्रम छपे थे, उठा लाया और घर आकर उन्हें राम की मेज पर रख दिया।

ओह ! यही चीज, इसी पुस्तक की इच्छा राम के हृदय में उठी थी। कैसे तुम्हारे हाथ लगी? प्रकृति देवी स्वयं अपने हाथों से राम की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही हैं।

इसमें संदेह नहीं कि इन दो सर्वस्व त्यागी संन्यासियों का विद्या की नगरी लाहौर में आकस्मिक मिलन, वार्तालाप, दर्शन बड़ा महत्त्वपूर्ण था। प्रो. तीर्थराम को उनके सान्निध्य में ९ नवम्बर से १८ नवम्बर तक रहने का सुनहरा और सौभाग्यशाली अवसर अनायास ही प्राप्त हुआ और वे धन्य-धन्य हो गए।

इस लेख का लेखक अत्यन्त भाग्यशाली है कि जो ११ दिसम्बर, २००६ ई. को ब्राह्मीवेला में स्वप्न में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का 'स्वप्न-दर्शन' प्राप्त कर धन्य हो गया।

मैंने अपना डी.लिट. शोध प्रबन्ध 'आधुनिक स्वातन्त्र्य संग्राम के परिप्रेक्ष्य में उत्तरी भारत के प्रमुख संतों की भूमिका' में इन दोनों संन्यासियों का विस्तार से उल्लेख किया है।

यद्यपि ये दोनों महापुरुष भौतिक रूप से परम पद को प्राप्त हो चुके हैं, उनकी निर्लिप्त आत्मा ब्रह्मानन्द सागर में निमग्न हो चुकी है, किन्तु उनके जीवन का सार, हृदय की पूंजी, साधना की पिटारी, तपस्या की सफलता, विचारों की विभूति बृहत् साहित्य सुमनावली के रूप में आज भी लोकमन को अपनी सुगन्ध से सुवासित कर रही है।

दोनों महान पुरुषों के पवित्र चरण कमलों में मेरा शत-शत नमन है। ○○○

साधारणतया हृदय में ध्यान करना ही अच्छा है। देह मानो मन्दिर है, ठाकुर उसमें प्रतिष्ठित हैं। ध्यान करते-करते मन जब स्थिर हो जायेगा, तब जहाँ इच्छा हो, इष्ट दर्शन होगा। बाजू में, हृदय में, पीछे, बाहर, सभी स्थानों में ध्यान किया जा सकता है ! ध्यान करते-करते ज्योति-दर्शन होता है, किन्तु इस प्रकार के ज्योति-दर्शन के साथ-साथ या उसके थोड़े समय बाद ही एक प्रकार का आनन्द मिलता है, जिसे छोड़कर मन आगे बढ़ना नहीं चाहता। उसके बाद घनीभूत ज्योति का दर्शन होता है, तब मन उसमें तन्मय हो जाता है। कभी-कभी तो दीर्घ प्रणवध्वनि सुनते-सुनते भी मन तन्मय हो जाता है। दर्शन और अनुभूति के राज्य की क्या कोई सीमा है? जितना बढ़ो, अनन्त ही अनन्त ! कई लोग थोड़ी ज्योति-वोति देख सोचते हैं कि बस यही अन्तिम है। पर यह ठीक नहीं। जहाँ जाकर मन का विकल्प समाप्त हो जाता है, कोई-कोई कहते हैं कि वही अन्तिम है और कोई-कोई कहते हैं कि वही आरम्भ है।

प्रत्येक दिन थोड़ा-बहुत जप-ध्यान करना। किसी भी दिन नागा मत करना। मन बालक के समान चंचल होता है, लगातार इधर-उधर भागता रहता है। उसको बार-बार खींचकर इष्ट के ध्यान में निमग्न करना। इसी तरह दो-तीन वर्ष करने पर देखोगे कि हृदय में अनिर्वचनीय आनन्द आने लगा है, मन भी शान्त हो रहा है। पहले-पहले जप-ध्यान नीरस ही लगता है, परन्तु औषधि-सेवन के समान दृढ़ता से मन को इष्टचिन्तन में निमग्न रखना चाहिए। तब कहीं धीरे-धीरे आनन्द का अनुभव होगा। परीक्षा में सफल होने के लिए कितना परिश्रम करते हैं, पर भगवान-लाभ उसकी तुलना में कहीं अधिक सहज है। प्रशान्त अन्त:करणपूर्वक सरल भाव से भगवान को पुकारना चाहिए।

– स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

साधुओं के पावन प्रसंग (६१)

स्वामी प्रभवानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

महाराज मन्दिर के पास रहते थे और संन्यासीनियों के साथ खाते थे। एक दिन उन्होंने मुझे फोन करके बुलाया। मेरे जाने पर उन्होंने कहा, ''इस समय विज्ञान महाराज की स्मृति मन में चल रही है। मैं बोलता हूँ और तुम लिखो।'' मैंने कहा, ''महाराज, उससे असुविधा होगी। इससे आपका बोलने का प्रवाह बाधित होगा। इससे अच्छा होगा कि आप टेप में बोलिए, बाद में मैं अच्छी तरह से उसका अनुलेखन कर लूँगा।'' वह स्मृति उद्बोधन (वैशाख, १३८२) में प्रकाशित हुआ।

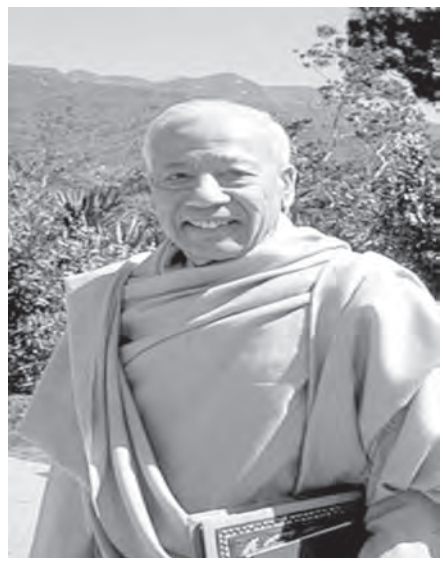

स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज

श्रीरामकृष्ण के पाँच शिष्यों ने अमेरिका में वेदान्त प्रचार किया था। (स्वामी विवेकानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी अभेदानन्द और स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) परवर्ती समय में रामकृष्ण मिशन के अनेक संन्यासियों ने बहुत विराट कार्य किया है किन्तु उनलोगों के बीच में स्वामी प्रभवानन्द जी प्रमुख हैं। उन्होंने मुझे अपने जीवन का संग्राम तथा सफलता की कहानी बतायी थी। वे १९२३ के जून महीने में स्वामी प्रकाशानन्द के साथ बोस्टन आये।

प्रभवानन्दजी ने कहा, ''मुझे लॉस एंजेल्स के कार्य के लिए लाया गया था, जिसे स्वामी सच्चिदानन्द ने आरम्भ किया था। वे बाद में भारत वापस चले गये थे। हमलोग बोस्टन में आकर जान पाये कि स्वामी परमानन्द ने लॉ स एंजेल्स में स्थान क्रय किया था और वे मुझे अपना सहायक बनाना चाहते हैं। प्रकाशानन्द उससे सहमत नहीं होकर मुझे अपने साथ सनफ्रांसिस्को लेकर गये। वे १९०६ ई. से वहाँ पर कार्य कर रहे थे और १९१६ ई. में स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी महाराज के महासमाधि में लीन होने पर वे अध्यक्ष हुए।

प्रभवानन्दजी ने कहा, ''स्वामी प्रकाशानन्द जी ने मुझे प्रथम छह महीना सप्ताह में एक गीता की कक्षा लेने के लिए कहा। महीने के अन्तिम रविवार को प्रवचन देने हेतु बोला। ''I was so nervous that everything went blank (मैं इतना घबरा गया कि सबकुछ भूल गया)। कुछ मिनट के बाद मैं हॉल छोड़कर कमरे में जाकर दरवाजा बन्द करके रोने लगा। उसके १०-१५ मिनट बाद प्रकाशानन्दजी ने हॉल में जाकर देखा कि सब चले गये हैं। उन्होंने मेरे कमरे में आकर सान्त्वना देते हुए कहा, 'Why didn't you ask for questions?' (तुमने प्रश्नोत्तर के लिए क्यों नहीं पूछा?)

मुझे स्मरण है कि हॉलीवूड पहुँचने के एक माह के अन्दर ही मुझे रविवार का प्रवचन करने को कहा गया। प्रवचन के पश्चात् महाराज के कमरे में जाने पर उन्होंने मुझसे पूछा कि तुमको stage fright (मंचभय) हुआ कि नहीं? मैंने कहा, ''महाराज, मेरा पैर तो नहीं काँपा, परन्तु पेट काँपा था।'' उन्होंने हँसकर कहा कि मेरे जैसा ही हुआ। उन्होंने मुझको उत्साहित करते हुए कहा, ''देखो, थोड़ा-सा

stage fright रहना अच्छा है। इससे तुमको श्रोताओं की सहानुभूति प्राप्त होगी।''

सनफ्रांसिस्को में दो वर्ष कार्य करने के पश्चात् प्रभवानन्दजी ने पोर्टलैंड में वेदान्त सेन्टर खोला। १९२० से १९४० ई. के बीच में अमेरिका में वेदान्त-प्रचार बहुत सरल कार्य नहीं था। लोग सोचते थे कि 'योग' और 'स्वामियों' द्वारा अर्थ, सौन्दर्य और विभूति प्राप्त किया जा सकता है। कहीं-कहीं पर श्वेत-अश्वेत वर्णविच्छेद भी था।

दिसम्बर, १९२९ ई. में प्रभवानन्द जी ने सिस्टर ललिता (Mrs carrie Wyckoff) के निमन्त्रण पर हॉलीवुड सेन्टर आरम्भ किया। ललिता, शान्ति और हेलेन – ये तीन बहनें पासाडेना में स्वामीजी की मेजबान थीं तथा शान्ति स्वामीजी की सेक्रेटरी थी। प्रभवानन्द महाराज के लॉस एंजेल्स पहुँचने पर परमानन्द जी ने वहाँ पर एक केन्द्र आरम्भ किया। सिस्टर देवमाता ने महापुरुष महाराज को पत्र लिखा कि एक ही शहर में प्रचार कार्य बन्द करें। महापुरुष महाराज ने उत्तर दिया था,''Paramananda does not own the city of Los Angeles.'' (अर्थात् परमानन्द के पास लॉस एंजेल्स शहर का स्वामित्व नहीं है।)

तदनन्तर १९३० ई. में आर्थिक संकट का समय आया। लोगों को कार्य नहीं मिलता था, खाने के लिए भी नहीं जुटता था।

महाराज ने मुझे बताया था कि कितना कष्ट और दारिद्र्य के बीच में उनका जाना हुआ : ''हमलोगों के पास खाने के लिए नहीं था। कॉफी के साथ क्रिम नहीं जुटता था। प्रतिदिन पोपकोर्न को दूध के साथ खाता था। कोई हमारी दैन्यदशा को नहीं जानता था। रूबी नाम की अफ्रिकी-अमेरिकी महिला ने छह महीने हमलोगों के भोजन की व्यवस्था की थी। तत्पश्चात् वे कहीं चली गयीं। अमिया नाम की एक अंग्रेज महिला (बाद में Lady of Sandwich हुई) Beverly Hills में कई ट्युशन करके जो पाती, उसी से हमारा भोजन होता था। अपर्णा (Elizabeth Tiernery) और मिस मॉक्लाउड की सहायता से किसी तरह टैक्स दिया गया।

इस अपर्णा-माँ को मैंने उनके वृद्धावस्था में देखा है। वे महाराज की शिष्या थीं और हमारे हॉलीवुड के अपार्टमेंट में रहती था। उनका सदैव प्रसन्न चेहरा रहता था। वे जब अपनी बड़ी गाड़ी लेकर बाहर जातीं, तब हमलोग परिहास करते हुए भक्तों से कहते थे, ''Please don't go to the temple now. Sri Ramakrishna is not there. He has gone out to give protection to Aparna-ma.''(अर्थात् अभी मन्दिर में मत जाइए क्योंकि श्रीरामकृष्ण वहाँ पर नहीं हैं। वे अपर्णा-माँ की रक्षा करने के लिए बाहर गये हुए हैं।)

१९३५ ई. के अगस्त में प्रभवानन्दजी ललिता को लेकर जापान होते हुए भारत गये। उस समय उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों का दर्शन किया। वे और ललिता सारगाछी जाकर स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज का दर्शन किये और स्वामी विज्ञानानन्द जी को लेकर विष्णुपुर, कामारपुकुर, जयरामवाटी गये। १९३६ ई. में भारत से वापस आकर उन्होंने हॉलीवुड में मन्दिर निर्माण करने का संकल्प किया। उस समय प्रवचन सुनने के लिए बहुत लोग आते थे। ग्रीन हाउस के लिविंग रूम में स्थान नहीं होता था। मन्दिर के लिए वे भारत से सुन्दर सिंहासन तैयार करके ले आये। उन्होंने मुझसे कहा था, ''देखो, इस सिंहासन को ठाकुर के दो शिष्य – स्वामी अखण्डानन्द और स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज का स्पर्श करा दिया हूँ।''

१९३८ ई. में १२,५०० डॉलर व्यय करके हॉलीवूड मन्दिर का निर्माण किया गया और उसके उद्घाटन समारोह में अमेरिका के अधिकांश संन्यासी आये थे। महापुरुष महाराज ने इसके पहले प्रभवानन्दजी को बेलूड़ मठ से कुछ पावन अस्थियाँ भेजी थीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने भी कई पावन अस्थियों की व्यवस्था की थी। अप्रैल, १९७६ ई. में मैंने महाराज से कहा, ''पावन अस्थियों को चिन्हित करना आवश्यक है।'' उन्होंने कहा, ''मेरा शरीर अच्छा नहीं है। चक्कर आता है।'' मैंने कहा, ''आप जिस दिन अच्छा अनुभव करेंगे, उस दिन १५-२० मिनट के लिए मन्दिर में आइयेगा और बता दीजिएगा कि कौन-सी अस्थि किसकी है?'' वे एक दिन मन्दिर में आकर कुर्सी पर बैठे। आनन्दप्राणा, भक्तिप्राणा, गौरीप्राणा, कृष्णानन्द और मैं उपस्थित थे तथा पावन अस्थियों को नम्बर देकर महाराज के निर्देशानुसार चिन्हित करके एक कागज पर लिखा। तदनन्तर आनन्दप्राणा ने उसको टाइप करके एक प्रति वेदी के भीतर तथा एक प्रति कार्यालय के फाईल में रख दिया। तदुपरान्त मैंने सान्टा बारबारा और टुबको मन्दिर के पावन अस्थियों की सूची तैयार की। इसके दो-तीन महीने के पश्चात् ही महाराज ने शरीर-त्याग किया। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में आध्यात्मिक-शिविर का आयोजन हुआ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में १९ नवम्बर, २०२३ को आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया गया।

शिविर के मुख्य वक्ता थे रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित होनेवाली 'जीवन-विकास' मासिक पत्रिका के सम्पादक स्वामी ज्योति:स्वरूपानन्द जी और रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर के सचिव स्वामी सेवाव्रतानन्द जी। आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने सभी अभ्यागत संतो, भक्तों और अतिथियों का स्वागत किया। शिविर का शुभारम्भ वैदिक शान्ति मन्त्र के द्वारा हुआ, जिसे स्वामी स्वामी विष्णुदेवानन्द, स्वामी पद्माक्षानन्द, स्वामी ब्रह्मामृतानन्द ने पाठ किया। भक्तों को श्रीरामकृष्णअष्टोत्तर शत-नामार्चना और ध्यान कराया गया। आश्रम के छात्रावास के छात्रों ने भजन प्रस्तुत किये। शिविर का संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने और धन्यवाद ज्ञापन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी राँची में भक्त-सम्मेलन और युवा-सम्मेलन आयोजित हुआ

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची में २६ नवम्बर, २०२३ को ९ बजे भक्त-सम्मेलन का आयोजन किया गया। आश्रम के साधुओं द्वारा शान्ति-पाठ और गुरु-वन्दना से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। उसके बाद आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी ने भक्तों को ध्यान कराया। तदनन्तर स्वामी अन्तरानन्द जी, स्वामी इष्टकामानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी और आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी ने 'गृहस्थ जीवन में आध्यात्मिकता' पर विभिन्न दृष्टिकोण से व्याख्यान दिये। तत्पश्चात् सन्तों ने भक्तों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दिया। ब्रह्मचारी शाश्वतचैतन्य, इष्टकामानन्द जी और श्रीरामरंजन पात्रा ने भजन प्रस्तुत किये। रामकृष्णशरणम् भजन से सम्मेलन समाप्त हुआ। इसमें कुल २१० भक्तों ने भाग लिया।

२७ नवम्बर, २०२३ को २.३० से ५ बजे तक आश्रम में **युवा सम्मेलन** का आयोजन किया गया। दीप प्रज्ज्वलन के बाद ब्रह्मचारी देवतात्मचैतन्य और विवेकानन्द फोरम के बच्चों ने शान्ति-मन्त्र का पाठ किया। आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी महाराज ने मंचस्थ अतिथियों का स्वागत किया और प्रारम्भिक व्याख्यान दिया। मुख्य वक्ता स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने 'स्वामी विवेकानन्द के अनुसार व्यक्तित्व-विकास क्यों और कैसे' पर व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् उच्च न्यायालय की न्यायाधीश श्रीमती अनुभा रावत चौधरी ने व्याख्यान दिये। अन्त में युवकों के प्रश्नों के उत्तर स्वामी भवेशानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, श्रीमती अनुभा रावत चौधरी ने प्रदान किये। विवेकानन्द फोरम के श्री जगन्नाथन

जी ने सबको धन्यवाद दिया। रामकृष्णशरणम् भजन से कार्यक्रम समाप्त हुआ। कुल १६५ युवाओं ने भाग लिया।

२८ नवम्बर, २०२३ को राँची से ६० किलोमीटर दूर दुबलाबेरा ग्राम में सभा हुई। यहाँ आश्रम द्वारा गदाधर प्रकल्प का संचालन किया जाता है। गाँव के विकास में लोगों को आश्रम द्वारा कृषि आदि कार्यों में सहायता की जाती है। गदाधर प्रकल्प के बच्चों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। उसी दिन वहाँ हनुमान मन्दिर का शिलान्यास भी आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी महाराज द्वारा किया गया। इसमें २०५ ग्रामीण और बच्चे उपस्थित थे। सभा को स्वामी भवेशानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, ब्रह्मचारी सपन महाराज, गाँव की मुखिया, गाँव के अध्यक्ष ने सम्बोधित किया। आश्रम द्वारा कम्बल-वितरण किया गया। अन्त में सभी गाँव वालों को खिचड़ी प्रसाद खिलाया गया।